THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_180677
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY
Call No. H82/R26Bh Accession No. G.H. 1724
Author राय, द्विजेन्द्रलाल ।
Title भारत-रमणी । 1942
This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, बम्बई नं० ४.

संशोधित संस्करण

जून १९४२

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६ केळेवाडी, बम्बई नं. ४.

नाटकके पात्र

पुरुष

उपेन्द्र	...	...	वकील
देवेन्द्र	...	...	उपेन्द्रका भाई
सदानन्द	...	...	देवेन्द्रका बचपनका मित्र
केदार	...	...	देवेन्द्रका मित्र
यज्ञेश्वर	...	...	महाजन
महेन्द्र	...	...	देवेन्द्रका लड़का
विनयकुमार	...	...	सदानन्दका लड़का

भक्तगण, बालकगण, खरीददार लोग, जेलर, जमादार, लुटेरे, और पहरेवाले सिपाही।

स्त्री

कामिनी	...	...	देवेन्द्रकी स्त्री
विनोदिनी	...	...	देवेन्द्रकी बड़ी लड़की
सुशीला	...	...	देवेन्द्रकी मँझली लड़की
कुमुदिनी	...	...	देवेन्द्रकी छोटी लड़की

भारत-रमणी

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—देवेन्द्रका बैठकखाना, **समय**—तीसरा पहर

[देवेन्द्र और सदानन्द]

देवेन्द्र—क्या करूँ भाई, बी० ए० की परीक्षा देनेके पहले ही लड़के-बाले पैदा हो गये और बड़ी झंझटमें पड़ गया। लाचार लिखना-पढ़ना छोड़कर साधारण तनख्वाहपर नौकरी कर लेनी पड़ी।

सदानन्द—तुम्हारे बापकी जायदादका बँटवारा कैसे हुआ ?

देवेन्द्र—वसीयतनामेंमें वे लगभग सारी जायदाद बड़े भइयाके नाम लिख गये हैं। मेरे हिस्सेमें पुरखोंके रहनेका घर और घरका सब सामान है। इसके सिवाय वे जो पाँच हजार रु० का कर्ज कर गये हैं, उसमें आधा मुझे और आधा भइयाको अदा करना पड़ेगा।

सदा०—आश्चर्य है !

देवेन्द्र—क्या आश्चर्य है ?

सदा०—यह कि वे अपने कमाऊ बेटेको तो सब दे गये और बे-रोज़गार बेटेके नाम सिर्फ़ घर और—

देवेन्द्र—पिताजीको अधिकार था कि अपनी ज़ायदाद चाहे जिसे दे जाएँ।

इसके सिवा सभी लोगोंके बाप तो ज़ायदाद छोड़ नहीं जाते। ना, उसके लिए मुझे कुछ दुःख नहीं है।

सदा०—हो सकता है, वे ऐसा ही कर गये हों। तुम्हारे पिताजी एक अद्भुत प्रकृतिके मनुष्य थे। याद है, उन्होंने तुम्हारे नाम क्या क्या रक्खे थे? एक जनेका नाम—

देवेन्द्र—हाँ, भइयाका नाम विक्रमादित्य और मेरा जूलियस सीज़र। उन्हें विश्वास था कि नामके ऊपर भी बहुत कुछ पुत्रका भविष्य निर्भर रहता है।

सदा०—कहाँ, सो तो नहीं देख पड़ता। कालिदास, चैतन्य, राममोहन, मधुसूदन, बंकिमचन्द्र आदि किसीके नाममें तो कोई विशेषता नहीं देख पड़ती। खूब अच्छे नामवाला बड़ा आदमी तो शायद एक भी खोजकर निकाला नहीं जा सकता।

देवे०—उसके बाद बाबाने हमारा नाम बदल दिया। पिताजी इसपर बहुत नाराज़ हुए थे।

सदा०—इस समय तुम्हारे लड़के-वाले कितने हैं?

देवे०—दो लड़के और तीन लड़कियाँ।

सदा०—लड़के क्या करते हैं?

देवे०—बड़ा संन्यासी हो गया और छोटा पढ़ता है।

सदा०—लड़कियोंका ब्याह हो गया?

देवे०—बड़ी लड़की विधवा हो गई है। यथेष्ट दान-दहेज देनेका ठिकाना न होनेके कारण दामाद जैसा चाहिए वैसा अच्छा नहीं मिल सका। मेरे समधी बहुत गरीब हैं; इसलिए लड़की मेरे ही पास रहती है।

सदा०—दूसरी लड़की?

देवे०—उसके लिए लड़का खोज रहा हूँ। वह बी० ए० पास है।

सदा०—अच्छा! वही लड़की न, जो मेरे लड़के विनयके साथ खेला करती थी?

देवे०—हाँ। अब उसे ऐरे गैरे घरमें ब्याह देनेसे भी काम नहीं चल सकता। लिखी पढ़ी ठहरी।

सदा०—बड़ी लड़की भी तो लिखी पढ़ी थी। एक दिन मैंने उसके मुँहसे हितोपदेशके कई श्लोक सुने थे।

देवे०—हाँ, पिताजीने एक लड़कीको संस्कृत और दूसरीको अँगरेज़ी पढ़ाई थी। वे देखना चाहते थे कि दो मनुष्य दो तरहकी शिक्षासे कैसे बनते हैं।

सदा०—और तीसरी लड़की ?

देवे०—वह अभी बहुत छोटी है और सदा बीमार बनी रहती है। एक लड़कीके ब्याहमें तो सारी आबरू मिटा दी। अब दूसरीके ब्याहकी विषम समस्या सामने है। इसी उलझनमें पड़ा हुआ हूँ।

सदा०—उसके ब्याहकी चिन्ता क्या है? वह तो बहुत गोरी और सुन्दरी है।

देवे०—आज कल वरका बाप सुन्दरी लड़की नहीं ढूँढ़ता। समाज इस समय वरोंका बाज़ार खोलकर बैठा है। रुपयोंके बिना इस नीच समाजमें लड़कीका ब्याह नहीं हो सकता।

सदा०—समाजको दोष क्यों देते हो देवेन्द्र, इसमें समाजका तो कोई अन्याय नहीं है।

देवे०—समाजका अन्याय नहीं है? कन्याओंको ब्याहनेमें कितने ही बापोंका सर्वस्व लग गया,—आबरू मिट गई! फिर भी अन्याय नहीं है?

सदा०—देवेन्द्र, जब तुमने पुत्र कन्याओंको पैदा किया है, तब उनका भरण-पोषण करनेके लिए तुम बाध्य हो। तुम लड़केका भरण-पोषण तो पचीस वर्ष तक करोगे; लेकिन लड़कीकी बारी आनेपर दस बरस भी न बीतने दोगे और उसके भरण-पोषणका भार वर-पक्षके सिर डाल दोगे। फिर भी उसके शेष जीवनके भरण-पोषणके लिए वर पक्षको कुछ न दोगे? इसके सिवा पुत्रको तो तुम अपनी सारी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी बना देते हो, फिर कन्या क्या कहींसे बहकर आई है? कन्याओंके पिता कन्याओंको एकदम सूखा टाल देना चाहते हैं। समाज वैसा नहीं करने देता, बस यही उसका अपराध है।

देवे०—मैं तो कन्याको यों ही नहीं टाल देना चाहता। पर वरका बाप दहेजका दावा क्यों करता है?

सदा०—नहीं तो रुपए किसे दोगे? हिन्दू-समाजके मतके अनुसार तुम्हारी लड़की उस वरके पिताके ही परिवारमें प्रवेश करेगी। वही उसे खिलावे-पिलावेगा और पहनावेगा। उसके हाथमें रुपए न दोगे तो किसे दोगे?

देवे०—वह अगर उन रुपयोंको बेकार खर्च कर दे, या उड़ा दे?

सदा०—सो तो कन्याका पिता भी उड़ा दे सकता है। उसका ससुर जब उसके खाने पहनेकी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेता है तब जहाँ तक संभव है, प्रतिज्ञाबद्ध होता है। इसके सिवाय वह और क्या कर सकता है? पीछे चाहे जो हो जाय, वह किसीके वशकी बात थोड़े ही है।

देवे०—मैं तो अपनी हैसियतके माफ़िक लड़कीको दहेज देनेके लिए तैयार हूँ। लेकिन लड़केवाले तो जबर्दस्ती वसूल करते हैं, घर-द्वार बिकवा लेना चाहते हैं।

सदा०—कभी नहीं। वे कुछ डकैती करने नहीं आते। तुम खुद उनके पास रुपए देने जाते हो।

देवे०—क्या करें, कन्याके ऋणसे किसी तरह उऋण तो होना है।

सदा०—कन्याका ब्याह करना अगर अवश्य कर्तव्य है और उससे पिण्ड छुड़ाना ही अगर अभीष्ट है, तो फिर जहाँ सस्तेमें सौदा हो वहाँ क्यों नहीं जाते? तुम बी० ए० पास, एम० ए० पास, लड़का चाहते हो, अर्थात् वरकी आगेकी आमदनीपर ही तुम्हारा विशेष लक्ष्य है। फिर वरका बाप ही पाँच हजार या दस हजार हाँकनेसे क्यों चूके? एण्ट्रेन्स पास लड़का चाहो तो शायद एक हजारमें ही मिल जायगा और तुम्हारी लड़की यदि बहुत खूबसूरत हो तो और भी कममें काम हो जायगा।

देवे०—तो फिर ब्याह क्या हुआ बेचने-खरीदनेका सौदा हुआ?

सदा०—बेचना-खरीदना शब्द सुननेमें खराब जरूर है, लेकिन संसारमें सब जगह वही देख पड़ता है। जो बाप लड़केके ब्याहमें रुपये लेता है वह लड़कीके ब्याहमें देता भी है। कौड़ी-कौड़ी बदला चुक जाता है। यह ठीक है कि जिसके लड़कियोंकी संख्या अधिक है उसको नुकसान अधिक है और जिसके लड़कोंकी संख्या अधिक है, उसे लाभ अधिक। लेकिन इस तरहकी विषमता तो पृथ्वीमें सभी जगह देखी जाती है। एक राजाका लड़का है, दूसरा फकीरका लड़का है; एक बुद्धिमान् है, दूसरा मूर्ख है; एक सबल है, दूसरा जन्मसे ही निर्बल।—क्या किया जाय?

देवे०—फिर उपाय?

सदा०—अब तुम अपना उपाय तो नहीं कर सकते, पर लड़कों-पोतोंका कर सकते हो। थोड़ी ही अवस्थामें उनका ब्याह मत करो। सबल और समर्थ होनेके पहले ही उनके सिर संसारका बोझा न लादो। इस बाल्य-विवाहने हमारी जातिको जैसा शिथिल और शीर्ण किया है वैसा और किसीने नहीं किया। और किसी भी कारणसे इतनी बड़ी हानि हिन्दुओंकी नहीं हुई।

देवे०—तब क्या तुम सनातन हिन्दू प्रथाको उलट देना चाहते हो?

सदा०—कुछ तो जरूर चाहता हूँ। देवेन्द्र, सनातन हिन्दू प्रथा अगर

भूलसे एकदम खाली होती, तो आज इस जातिकी ऐसी दुर्दशा न देख पड़ती। इस प्रथामें केवल धर्मकी ही पुण्य किरणें नहीं हैं, अधर्मकी भी बहुत-सी घास-फूस जम आई है और उसने जड़ पकड़ ली है। उसे उखाड़ कर फेंक देना होगा।

देवे०—तुमने तो चिन्तामें डाल दिया।

सदा०—तुम खुद अपनेहीको क्यों नहीं देखते? तुम्हारा अगर थोड़ी उम्रमें ब्याह न होता तो तुम अपने भविष्यको सुधारकर अच्छा बना लेते। तुम्हें इस आफतमें, इस बंधनमें न पड़ना पड़ता।

देवे०—लड़केका तो थोड़ी उम्रमें ब्याह नहीं करूँगा लेकिन क्या लड़कीको भी बिठा रखना होगा?

सदा०—लड़कियोंका ब्याह ब्याहके योग्य अवस्थामें करो और सो भी अगर अच्छे पात्रके साथ कर सको तो।

देवे०—और अगर उतनी हैसियत या सुभीता न हो तो?

सदा०—उन्हें ब्रह्मचर्यसे रहना सिखाओ। बालविधवायें यदि ब्रह्मचर्यसे रह सकती हैं, तो कुआँरी बालिकायें क्यों न रहेंगीं? और अगर तुम्हारा यह मत हो कि कुआँरी लड़कियाँ ब्रह्मचर्य नहीं रख सकतीं तो फिर विधवा-विवाह प्रचलित करो।

देवे०—मैं अच्छी तरह नहीं समझ सका कि तुम्हारा मत क्या है।

सदा०—मेरा मत सुनोगे? मेरा मत यह है कि यदि अच्छे घरानेके उत्तम लड़केके साथ ब्याह देनेकी हैसियत है, तो बालिका चाहे कुआँरी हो चाहे विधवा, उसे ब्याह दो। और यदि धन-सम्बन्धी असमर्थता है तो घर-द्वार बेचकर कुआँरी या विधवा किसीका भी ब्याह मत करो। दोनोंको ही ब्रह्मचर्यकी शिक्षा दो।

देवे०—लेकिन उसमें जो विपत्ति है, उसके बारेमें भी कुछ सोचा है?

सदा०—सोचा है लेकिन संसारकी ऐसी कौन-सी अवस्था है जो केवल शुभ ही हो?

देवे०—लेकिन इस तरह तुम कुछ कुआँरियोंका ब्याह न करके विपत्ति ही बढ़ा रहे हो।

सदा०—मगर उधर कुछ विधवाओंका ब्याह कराकर विपत्ति कम भी कर रहा हूँ। देवेन्द्र, हमारा देश बड़ा ही गरीब है; परन्तु पोष्य प्राणियोंके

अर्थात् परिवारके बढ़ानेका आग्रह यहाँ सब देशोंसे अधिक है। एक विद्वानने स्त्रियोंको लक्ष्य करके कहा है कि "हे भारत ललनाओ, बलवीर्यहीन हजारों दासतुल्य पुत्रोंको पैदा करना रोक दो।" लेकिन उसने यह नहीं सोचा कि इसके लिए भारत-ललनायें नहीं, बल्कि उसकी पुरुष-जाति ही दोषी है। देवेन्द्र, इस बालविवाहकी प्रथाको मिटा दो। इसीके साथ जो और सब प्रथायें बहुत जीर्ण हो गई हैं, उनकी भी मरम्मत करनी होगी। लेकिन पहले इसी प्रथाको सुधारो। इस बालविवाहने जातिको मजाके अभावसे दुर्बल, अन्नके अभावसे शीर्ण, बलके अभावसे डरपोक और उद्यमके अभावसे निकम्मा बना दिया है। समाजका इससे बढ़कर या इतना अपकार और किसी प्रथासे नहीं हुआ।

देवे०—यह क्या, तुम तो रोने लगे भाई!

सदा०—नहीं तो। अच्छा, अब मैं जाता हूँ। (जल्दीसे प्रस्थान)

देवे०—अभी तक वैसा ही स्वभाव है। सदानन्दसे आज कितने दिनोंके बाद भेंट हुई। दस वर्ष हो गये होंगे। लड़कपनके साथियों और सहपाठियोंको देखकर हृदयकी जलन कुछ कम हो जाती है और उसी बचपनकी याद आ जाती है। वह बाल्यावस्था कैसी मधुर थी जब मैं सदानन्दके गलेमें हाथ डालकर निःसंकोच रास्तेमें चलता था, जी खोलकर बातें करता था। वह बाल्यावस्था कैसी मधुर थी जब शरदृऋतुका पूर्ण चन्द्रमा उदय होता था और मैं अवाक् होकर एकटक उस की ओर ताका करता था। वर्षाकालमें मेघोंके गरजनेसे हृदय नाच उठता था। गर्मियोंकी रातोंमें आकाशमें नक्षत्र-पुंज निकल आते थे, जान पड़ता था, जैसे आकाशके रोमाञ्च हो रहा है। उधर देखते देखते आँखें चौंधा जाती थीं। वह बाल्यावस्था कैसी मधुर थी जब यह चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी कि कल क्या खाना होगा; लड़केको पढ़ाना है, लड़कीका ब्याह करना है, कहाँसे खर्च आवे? आहा कैसा अच्छा समय था! कौन? केदार!

[केदारका प्रवेश]

केदार—नहीं छोड़ेगा।

देवे०—क्या?

केदार—यह जगह। असल तो लेगा ही, और सूद दरसूद वसूल करेगा। मैं बैरिस्टरके पास जाता हूँ। (जाना चाहता है।)

देवे०—अरे कहाँ जाते हो?

केदार—बैरिस्टरके बँगलेपर।

देवे०—अरे भाई, जरा ठहर कर जाना।

केदार—समय नहीं है।

देवे०—कुछ जलपान कर लो।

केदार—फ़ुरसत नहीं है।

देवे०—देर तो बहुत हो गई है।

केदार—बैरिस्टरसे मुलाकात करना है। कल आऊँगा। हाँ देखो—नहीं, पहले बैरिस्टरसे सलाह कर लूँ। मगर मेरा विश्वास है कि इसमें जरूर कुछ जाल है।

देवे०—काहेमें ?

केदार—अभी रहने दो, फिर कहूँगा। (प्रस्थान)

देवे०—अरे सुनो तो।

केदार—(नेपथ्यमें) समय नहीं है।

देवे०—(हँसता है)

[कामिनीका प्रवेश]

कामिनी—खानेको तैयार हो गया। चलकर नहा लो। क्यों, हँस क्यों रहे हो ?

देवे०—केदार आया था।

कामिनी—सो क्या हुआ ?

देवे०—मेरे लिए बेचारा दौड़-धूप कर रहा है। भला, सूद कौन छोड़ देगा ?

कामिनी—काहेका सूद ?

देवे०—पिताजी जो कर्ज छोड़ गये हैं, उसका सूद। तीन हजार सूदके हो गये हैं। महाजन क्यों छोड़ेगा ? बेचारा केदार यह भूतकी बेगार अपने सिर लेकर इधर उधर भटक रहा है।

कामिनी—तुम्हारे भी तो इस बातके सिवा और कोई चर्चा नहीं है। आओ, चलकर नहाओ खाओ।

देवे०—चलो।

कामिनी—हाँ, और महेन्द्र कहता था कि उसे सौ रुपयोंकी बड़ी भारी जरूरत है।

देवे०—कितनेकी ?

कामिनी—सौ रुपयोंकी।

देवे०—क्या करेगा ?

कामिनी—यह तो नहीं जानती।

देवे०—उससे कहो, अगर वह जुआ खेल कर रुपये उड़ा देना चाहता है, तो खुद कमाकर उड़ावे।

कामिनी—न दोगे तो वह रूठ जायगा।

देवे०—रूठ जाय।

कामिनी—एक लड़का संन्यासी होकर चला गया है—

देवे०—यह भी जाय। मैं अब इन्हें नहीं निभा सकता, जाओ। लड़केके साथ बस यही एक सम्बन्ध है कि 'रुपए दो—रुपए दो'। (प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—उपेन्द्रके घरकी बाहरी बैठक

समय—प्रातःकालके दस बजे

[उपेन्द्रके खुशामदी भक्त और केदार]

नवीन—हमारे प्रभुको आपने नहीं देखा ?

केदार—देखा क्यों नहीं, अनेक बार देखा है।

विनोद—तो शायद आप उन्हें पहचान नहीं सके।

केदार—नहीं, खूब पहचान लिया है।

शंकर—जी नहीं। अगर पहचान सकते तो ऐसी निन्दा न करते। वे परम वैष्णव, साधु, भक्त, परमभक्त हैं।

नवीन—उनकी चुटैया (दिखाकर) इतनी बड़ी है !

केदार—आज कल क्या चुटैयाकी लंबाईसे ही साधुताकी परीक्षा होती है ?

नवीन—जी नहीं, भक्ति—भक्ति। हमारे प्रभुकी हरिभक्ति। आपने नहीं देखी ? उसे कैसे समझाया जाय !

केदार—समझानेकी दरकार नहीं है।

विनोद—हरिकीर्तन करते करते वे जमीनमें लोट जाते हैं।

केदार—अच्छा ! साथ ही आप लोग भी लोट जाते हैं।

शंकर—हमारी भला क्या मजाल है ! हम तो उनसे वैष्णवधर्मका तत्त्व सीखते हैं।

केदार—सीखिए। जरा अच्छी तरह सीखिएगा, तर जाइएगा।

नवीन—हमारी भला क्या मजाल है! मगर हाँ, इसी आशासे उनके श्रीचरणोंकी शरणमें पड़े हैं।

केदार—पड़े रहिए।

विनोद—ऐसे त्यागी महापुरुष—

केदार—त्यागी? कभी किसीके ऊपर एक पैसा भी उन्होंने बाकी छोड़ा है?

विनोद—पैसा? पैसा तो तुच्छ चीज़ है! वे अतिशय अमूल्य उपदेश मुफ्त बाँटते हैं।

केदार—मुफ्त?

विनोद—वे रुपये-पैसेको तिनकेके जैसा तुच्छ समझते हैं। आप अगर एक दफा उनके मुखसे वैष्णवधर्मकी व्याख्या सुनें—

केदार—तो तर जाऊँ, क्यों न?

नवीन—यही तो त्याग है। वे मुफ्त ही मनके रोगकी दवा बाँटते हैं।

केदार—आराम न होनेसे मूल्य फेर देते हैं?

शंकर—फेर देना कैसा? मूल्य लेते ही नहीं हैं।

केदार—बिलकुल? जान पड़ता है, रोगीकी सेवा भी शायद मुफ्त करते हैं, क्यों?

विनोद—क्या कहा केदार बाबू? रोगीकी सेवा करेंगे प्रभु? वह देखिए, उनका फोटो टँगा है। भला, यह सूरत रोगीकी सेवा करनेके योग्य है?

केदार—बापरे! बड़ा अपराध हुआ। लेकिन रोगी—अर्थात् रोगिणीकी सूरत अगर अच्छी हो तो?

विनोद—आप कहते क्या हैं महाशय! हमारे प्रभुके साथ ठट्ठा!

केदार—हँसी-ठट्ठा करनेका मुझे अभ्यास नहीं है। आजकल कलकत्तेमें जहाँ तहाँ ऐसे अनेक मुँइफोड़ अवतार दिखाई देने लगे हैं। और यह देश भी खूब है भैया, कि यहाँ इनके भक्त भी खासे जुट जाते हैं।

विनोद—लीजिए, वे प्रभु आ रहे हैं।

शंकर और नवीन—प्रभु आ रहे हैं! प्रभु आ रहे हैं!

केदार—'आ रहे हैं' क्यों कहते हो? उदय हो रहे हैं! देखते नहीं हो, चारों ओर प्रकाश फैल रहा है!

विनोद—हाँ हाँ, उदय हो रहे हैं, उदय हो रहे हैं!

और दो भक्त—उदय हो रहे हैं ! उदय हो रहे हैं !

[आधी आँखें मूँदे माला जपते हुए उपेन्द्रका प्रवेश]

भक्तगण—सावधान, सावधान ! (साष्टांग प्रणाम करते हैं ।)

उपेन्द्र—तुम्हारी जय हो ।

विनोद—प्रभु, केदार बाबू—

उपेन्द्र—ओ, केदार बाबू हैं। (मुस्कराकर) सौभाग्यकी बात है ! केदार बाबू, कैसे आना हुआ ?

केदार—प्रभो, आपके श्रीमुखसे वैष्णव धर्मके तत्त्वका उपदेश सुनने आया हूँ ।

उपेन्द्र—तत्त्वका उपदेश ? भला, तत्त्व मैं क्या जानूँ ! मैं मूर्ख उस महाधर्मका तत्त्व क्या जानूँ, जिसे महाप्रभु श्रीगौराग—(प्रणाम करता है ।)

भक्तगण—आहा ! (महाप्रभुके लिए सब प्रणाम करते हैं ।)

उपेन्द्र—वृक्षसे फूल, फूलसे फल और फलसे बीज पैदा होता है । यह बीज ही उत्पत्तिका कारण है ।

भक्तगण—कैसा गम्भीर तत्त्व है ! बड़ा ही गम्भीर विषय है !

उपेन्द्र—फूल यद्यपि देखनेमें सुन्दर है तो भी—

भक्तगण—तो भी—

उपेन्द्र—फूलमें ही वृक्षकी चरम परिणति नहीं है । चरम परिणति बीजमें है । श्रीकृष्णकी बाल्य-लीला फूल है और भगवद्गीता बीज है । गोविन्द श्रीकृष्ण हरे मुरारे !

भक्तगण—ओहो—हो—हो—हो—(प्रणाम करते हैं ।)

केदार—बदमाशीसे जुआचोरी और जुआचोरीसे ढोंग !

भक्तगण—यह क्या केदार बाबू ?

केदार—चुप रहो खुशामदी कुत्तो ! नहीं तो ढोंगसे क्रोधका उदय और क्रोधसे थप्पड़का प्रहार होगा । मैं और सब कुछ सह सकता हूँ, पर ढोंग नहीं सह सकता । एक पैसा भी तो गरीबको देनेमें जान निकलती है, किसीके भी दुःखकी ओर दृष्टि नहीं है, पर जबानके जोरसे अवतार और महापुरुष बन बैठते हैं ! ऐसे महापुरुषोंको कोई पुलिसमें क्यों नहीं दे देता ?

भक्तगण—ईर्षा ईर्षा !

केदार—तुम्हारी स्तुति सुनकर मुझे ईर्षा होगी ? अगर यह संभावना होती

कि मैं तुम्हें नौकर रख लूँगा, तो तुम आकर मेरे तलवे चाटते और पूँछ हिलाते। उपेन्द्र भैया, मैं तुम्हारे पास नहीं आया था। मैं आया था यज्ञेश्वर बाबूकी तलाशमें। सोचा था, यहाँ उनसे मुलाकात होगी। मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ। उपेन्द्र बाबू, मैं अपनी सरल बुद्धिसे यह किसी तरह नहीं समझ पाता कि तुम्हारे पिताजी जब अपनी सब जायदाद तुम्हारे नाम लिख गये हैं तब केवल ऋण ही क्यों दोनों भाइयोंमें बराबर बराबर बाँट गये ?

उपेन्द्र—आप क्या यह कहना चाहते हैं कि वह—

केदार—वसीयतनामा जाली है। हाँ, यही कहना चाहता हूँ और यही एक दिन प्रमाणित भी कर दूँगा। अच्छा महाशयो, मैं जाता हूँ। (जाना चाहता है।)

उपेन्द्र—सुनो केदार बाबू !

केदार—ना महाशय, अब नहीं सहा जाता। सोचा था कि यज्ञेश्वर बाबूकी राह देखूँगा; लेकिन अब नहीं ठहर सकता। यहाँकी हवा मुझे जहरीली जान पड़ती है। मेरी साँस बन्द हुई जा रही है। मैं जाता हूँ। (प्रस्थान)

उपेन्द्र—अरे सुनो तो—

नेपथ्यमें—अब नहीं सह सकता—

उपेन्द्र—फिर भी जरा—

नेपथ्यमें—मेरा सिर चकरा रहा है।

नवीन—प्रभु, इस पाजीको आप क्यों बुला रहे हैं ?

उपेन्द्र—आहा, बेचारा दयाका पात्र है ! नहीं तो उसका उद्धार फिर किस तरह होगा ?

विनोद—प्रभु दयाकी खान हैं।

शंकर—पापियोंको उबारनेके लिए ही तो प्रभु आये हैं।

उपेन्द्र—आहा ! कीर्तन करो ! कीर्तन करो !

(भक्तगण कीर्तन शुरू कर देते हैं)

गाता गाता कौन जा रहा, वह सरिताके मारगपर ?
हरि बोले, नाचे पागल-सा, गिरता पड़ता पगपगपर ॥
तन-मन बेचे, नाचे, केवल प्रेम चाहता इस जगमें।
देव-भिखारी नरके द्वारे, देखो आकर, इस ढँगमें ॥

है मतवाला प्रेम-नशेका, नैन बहे आँसूधारा।
रोता रोता करुणासागर, अपनेको भूला प्यारा॥
हिंसा-द्वेष लोटते प्रभुके धूलभरे पदपंकजमें।
कहता है, छोड़ो हमको, हम जायँ चले हरिके व्रजमें॥
और नहीं या तो प्रभु तेरे प्रबल प्रेममें गल जावें।
वैर-विरोध-क्रोध-हिंसादिक दुर्भावोंको दल जावें॥
यह तो नूतन मधुर प्रणयका पुर है, इसमें भला कहो–
जगह हमारे लिए कहाँ है? हम तो सब हैं मूढ़ अहो॥
वह कहता है कौन कहाँ है गैर, सभी हैं निज भाई।
प्रेमदृष्टिसे सबको देखूँ, यही बात है मनभाई॥
केवल हँसता और सभीको जीसे करता प्यार रहूँ।
देशदेशमें घूमूँ ऐसे, इतना ही मैं सदा चहूँ॥
वह देखो, उस प्रभुके पीछे जाते हैं सब नरनारी।
और प्रतिध्वनि नील गगनमें व्याप्त हो रही है भारी॥
तुम सब आओ चले, प्रेमसे कहो, कृष्ण गोविन्द हरे!
फटी पुरानी पोथी फेंको, आओ आओ चलो अरे॥

(एक नौकर जल-पानका सामान लेकर आता है। उपेन्द्र भोजन करने बैठता है। भक्तगण कीर्तन करते हैं। कीर्तन समाप्त होने पर भी उपेन्द्र भोजन करता रहता है।)

उपेन्द्र—देखो भक्तगण, भगवानका कैसा विचित्र कौशल है! घास मनुष्यके किसी काम न आती अगर पशु उसे न खाते। उसी घाससे गायके शरीरमें दूध पैदा होता है और फिर वही दूध कैसे सहजमें मनुष्यके शरीरको पुष्ट करता है! कैसा आश्चर्य है!

भक्तगण—कैसा आश्चर्य है!

उपेन्द्र—गेंहूसे मैदा बनता है, मैदे और घीके मेलसे पूरी बनती है। कैसा आश्चर्य है!

भक्तगण—कैसा आश्चर्य है!

उपेन्द्र—अब ये पूरियाँ रबड़ीके साथ पेटकी ओर चली जायँ! (खाता है) हे हरि! तुम्हीं सत्य हो!

भक्तगण—तुम्हीं सत्य हो ! (हरिके उद्देश्यसे प्रणाम करते हैं।)

नवीन—प्रभू, तो अब हम लोग घर जाकर हरिके नामकी सत्यताका अनुभव करें ?

उपेन्द्र—हाँ जरूर। रात हो गई है—

विनोद—प्रभू, अपने चरणोंमें रखिएगा।

उपेन्द्र—कुछ चिन्ता नहीं है वत्स !

शंकर—हम लोग पापी हैं।

उपेन्द्र—हरिकी कृपा होनी चाहिए, फिर संसार-सागरमें कोई भय नहीं है। हरिकीर्तन करते करते अपने घर जाओ।

(कीर्तन करते करते भक्तोंका प्रस्थान)

उपेन्द्र—जो भजे वही भक्त है; फिर वह भजना चाहे धनके लिए हो, और चाहे भक्तिके लिए। मगर जान पड़ता है, इस केदारने मुझे पहचान लिया है। इससे भजाना होगा और इसे अपने दलमें मिलाना होगा। अब मुँह परसे नकली चेहरा हटाना चाहिए। लो, वह यज्ञेश्वर आ गये।

[यज्ञेश्वरका प्रवेश]

उपेन्द्र—आओ आओ, तुमसे कुछ कहना है।

यज्ञे०—क्या ?

उपेन्द्र—यही कि पिताका सारा कर्ज देवेन्द्रहीसे वसूल करो।

यज्ञे०—वह कहाँसे देगा ?

उपेन्द्र—घर-द्वार बेच कर—

यज्ञे०—वसूल करके दिला सको तो इसमें मुझे कुछ आपत्ति नहीं है; लेकिन मैं एक पैसा नहीं छोड़ूँगा।

उपेन्द्र—तुम्हारा पेट तो बहुत बड़ा देख पड़ता है।

यज्ञे०—और तुम्हारा ही पेट क्या कम है जो सारी जायदाद हड़प ली, फिर भी नहीं भरता !

उपेन्द्र—लेकिन तुम्हारे तो जोरू या बाल-बच्चे नहीं हैं।

यज्ञे०—पर उनके होनेमें कितना-सी देर लगती है ?

उपेन्द्र—इसके माने ? दूसरा ब्याह करोगे क्या ?

यज्ञे०—लड़की खोज रहा हूँ।

उपेन्द्र—अच्छा ! मुझसे तो अबतक नहीं कहा ?

यज्ञे०—आज वही कहने आया हूँ।

उपेन्द्र—मामला क्या है ?

यज्ञे०—तुम्हारे भाईकी एक कुँआरी लड़की है—

उपेन्द्र—हाँ है तो। वह लो केदार बाबू फिर आ गये !

[केदारका प्रवेश]

केदार—जरा देवर्षिसे मिलने आया हूँ।

यज्ञे०—देवर्षि कौन ?

केदार—स्वयं वक्ता महाशय। वाह खूब जोड़ी मिली है—उपेन्द्र बाबू और यज्ञेश्वर बाबू—महर्षि और देवर्षि !

उपेन्द्र—देखिए केदार बाबू, आप बहुत अच्छे आदमी हैं। अगर आप—

केदार—अगर मैं महर्षिका शिष्य हो जाऊँ, क्यों न ? चाहता तो हूँ महर्षिजी, पर हम पाप-पुण्यके गढ़े हुए मर्त्यलोकके मनुष्य हैं। क्या हम स्वर्गकी इतनी अनावृत ज्योति सह लेंगे ?

उपेन्द्र—किन्तु (थूक निगलता है) मैं अभी आता हूँ केदार बाबू, कुछ खयाल न कीजिएगा। (प्रस्थान)

केदार—तुम दोनों मिलकर जरूर कोई बहुत बड़ी शैतानी सोच रहे हो। खैर सोचते रहो। देखो यज्ञेश्वर बाबू, अगर तुम सूद न छोड़ दोगे तो हमने ठीक किया है कि न असल देंगे और न सूद ही देंगे। जाकर नालिश कर लो।

यज्ञे०—यह क्या केदार बाबू ?

केदार—मैं और कुछ नहीं सुनना चाहता। कुछ नहीं देंगे—बस, खतम हो गया।

यज्ञे०—देवेन्द्र बाबूने तुम्हारी सलाहसे अन्तमें यही ठीक किया दिखता है ?

केदार—नहीं देंगे तो क्या करोगे ? मुकद्दमा चलाओ, मैं वकीलकी सलाह ले चुका हूँ। दस्तावेज ठीक नहीं है, कर्ज साबित नहीं होगा। इसलिए सूद छोड़ दो भैया, इसीमें अच्छाई है। नहीं तो फिर जाकर नालिश कर लो।

यज्ञे०—केदार बाबू, नालिशें करते करते तो मेरे बाल पक गये हैं। नालिश जरूर करूँगा।

केदार—मैं अब भी कहता हूँ कि सूद छोड़ दो और आपसमें फैसला कर लो। नहीं तो असल भी न देंगे और सूद भी न देंगे।

यज्ञे०—असल भी देना पड़ेगा, सूद भी देना पड़ेगा, और ऊपरसे डिकरीका खर्चा भी।

केदार—देखो यज्ञेश्वर बाबू, सूद छोड़ दो और यह चालाकी रहने दो।

यज्ञे०—इसमें चालाकी क्या है ?

केदार—चालाकी नहीं तो क्या है ? असल भी नहीं छोड़ोगे और सूद भी नहीं छोड़ोगे, यह चालाकी नहीं तो और क्या है ?

यज्ञे०—यह काहेकी चालाकी है ? सूदके ही लिए तो रुपए उधार दिये थे, फिर सूद कैसे छोड़ दूँगा ? इसमें चालाकी क्या है ?

केदार—(घड़ी देखकर,) अरे, नौ बज गये ! ट्रेनका समय भी हो आया। नहीं छोड़ोगे ?

यज्ञे०—ना।

केदार—तो जहन्नुममें जाओ। (प्रस्थान)

यज्ञे०—पर एक बात है ! केदार ! ओ केदार ! अरे सुनो, सुनो।

[केदारका फिर प्रवेश]

केदार—क्या सूद छोड़ दोगे ? शाप दे चुका हूँ, अब उसे फेर नहीं सकता। लेकिन अगर सूद छोड़ दो, तो अब भी मैं इतना कर सकता हूँ कि जहन्नुममें दो-तीन सालसे अधिक तुम्हें नहीं रहना पड़ेगा !

यज्ञे०—अजी, इसकी मुझे परवा नहीं। कुछ दिन और रह लूँगा। इसमें मेरी कोई हानि नहीं। हाँ, अगर तुम एक काम कर सको तो मैं असल और सूद दोनों छोड़ दे सकता हूँ।

केदार—बतलाओ क्या काम है ? जरूर कोई असाध्य काम होगा।

यज्ञे०—असाध्य ऐसा कुछ नहीं है। उससे दोनोंका भला होगा।

केदार—अच्छा, बात तो खूब मजेदार छेड़ी है। (छड़ी रखकर) सुनूँ तो, मामला क्या है ?

यज्ञे०—सुना है, देवेन्द्र बाबूके एक ब्याहके योग्य लड़की है। मेरी भी दूसरी स्त्री अभी हालमें मर गई है। वे अगर मेरे साथ अपनी लड़कीका ब्याह कर दें—

केदार—तुम्हारे साथ ? यह तो तुमने बड़े मजेकी बात कही ! तुम्हारे साथ ?

यज्ञे०—इसमें हानि ही क्या है ? उनकी लड़की भी तो सयानी हो गई है। इस समय अगर—

केदार—तुम्हारे साथ ? यह तो बड़ी अच्छी दिल्लगी है ! (हँसता है) यज्ञेश्वर, तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है, उसका इलाज करो।

यज्ञे०—पर तुम हँसते क्यों हो ? अगर यह प्रस्ताव कर सको, तो देवेन्द्र बाबूके दोनों काम बन जाएँ।

केदार—यज्ञेश्वर बाबू, अगर मेरे कोई लड़की होती और वह कानी अंधी, लँगड़ी कुबड़ी होती, जितने दोष दुनियामें देख पड़ते हैं वे सभी उसमे होते और उसका ब्याह न होनेके कारण हिन्दूसमाज मुझे सूलीपर चढ़ा देता, तो भी मैं, लड़कीको उसके हाथ-पैर बाँध कर पानीमें भले ही फेंक देता और खुद हँसता हुआ सूलीपर भले ही चढ़ जाता, मगर तुम जैसे पाजीके साथ उसका ब्याह नहीं करता। यह बिलकुल सच कह रहा हूँ। (प्रस्थान)

यज्ञे०—अच्छा, तुम्हारी इतनी मजाल ? ठहरो, तुम्हें इसका मजा चखाता हूँ।

[उपेन्द्रका प्रवेश]

उपेन्द्र—यज्ञेश्वर, क्या तुम वास्तवमें यह प्रस्ताव करते हो ? सचमुच ही तुम्हारा यही विचार है ?

यज्ञे०—हाँ।

उपेन्द्र—लेकिन यह तो विवाह नहीं है, व्यभिचार है।

यज्ञे०—उपेन्द्र, मेरे आगे ऋषि बननेकी भला क्या जरूरत ? हम दोनोंने क्या अबतक भी एक दूसरेको नहीं पहचाना ? हमने क्या एक साथ—(इशारा करता है।)

उपेन्द्र—चुप।

यज्ञे०—मैं क्या जानता नहीं हूँ कि हम दोनों ही पापी हैं ? लेकिन मैं सिर्फ पापी हूँ और तुम ढोंगी पाखण्डी भी हो। तुम मेरे दादा हो।

उपेन्द्र—अच्छा तो कहो, क्या करना होगा ?

यज्ञे०—सहायता करोगे ?

उपेन्द्र—करूँगा।

यज्ञे०—बस। (हाथ पकड़ता है) तो मैं तुम्हारा भरोसा कर सकता हूँ ?

उपेन्द्र—पूरी तौरसे।

यज्ञे०—तो अब मैं जाता हूँ। (प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—देवेन्द्रका घर। **समय**—प्रातःकाल।

[देवेन्द्र और कामिनी]

देवे०—पिताका कर्ज चुकाये बिना मैं और कोई खर्च नहीं कर सकूँगा।

कामिनी—लड़की सयानी हो गई है और अब वह घरमें नहीं रक्खी जा सकती।

देवे०—तो निकाल दो।

कामिनी—मैया री, यह क्या कह रहे हो?

देवे०—पिताका कर्ज अब मैं नहीं रख सकता। सूद और असल मिलाकर मेरे हिस्सेके लगभग पाँच हजार रुपये हो गये हैं।

कामिनी—लेकिन लड़कीका ब्याह तो करना ही पड़ेगा।

देवे०—मेरी समझमें नहीं आता कि क्यों करना पड़ेगा? लड़की क्या लड़केसे भी बढ़कर है?

कामिनी—हमारी नजरमें दोनों बराबर हैं।

देवे०—तब? मेरे दो लड़के थे। एक धनके अभावसे बिगड़ कर संन्यासी हो गया और दूसरेको, पढ़ाईका खर्च न उठा सकनेके कारण, स्कूलसे हटा कर, सत्यानासकी राहमें छोड़ दिया।

कामिनी—फिर भी वे किसी न किसी तरह अपना पेट पाल लेंगे। मगर लड़की—

देवे०—तुम ठीक कहती हो; लेकिन यही एक लड़की तो नहीं है। दूसरीके बाद तीसरीका भी ब्याह करना होगा। जाओ, भीतर बैठो। कन्याके ब्याहका मुझे भी बड़ा ख़याल है। जाओ।

(कामिनीका प्रस्थान)

देवे०—सबेरेके घाममें इस पेड़के पत्ते नाच रहे हैं। मैं अगर पेड़ होता तो इस जाड़ेके घाममें बैठकर आनन्द मनाता। लड़कीके ब्याहकी चिन्ता तो न करनी पड़ती। ब्याह किया था—अच्छा, गरीबके घर बाल-बच्चे क्यों पैदा होते हैं? सब विधाताकी भूल है! कौन? सदानन्द!

[सदानन्दका प्रवेश]

देवे०—आओ भाई।

सदा०—क्या तुम्हारी तबियत खराब है ?

देवे०—तबियत खराब ? (कुछ इधर उधर करके) नहीं तो !

सदा०—नहीं ? तुम अपने जीका हाल खुलासा करके क्यों नहीं कहते ?

देवे०—क्या कहूँ ! सदानन्द, तुम लड़कपनमें गाना गाते थे।

सदा०—अब भी गाता हूँ; मगर वे गाने नहीं गाता।

देवे०—तो फिर क्या गाते हो ?

सदा०—अब प्रेमके गाने नहीं गाता, हँसी दिल्लगीके गाने नहीं गाता। वे दिन चले गये। हँसी दिल्लगीके दिन चले गये; मेरे भी और समाजके भी। सूरदास और विद्यापतिके गीत अब अच्छे नहीं लगते। और गाने गाता हूँ

देवे०—तो वही गाओ।

सदा०—अच्छा।

देवेन्द्र—(हँसकर) आज तुम्हारा गाना कोई नहीं सुनेगा।

सदा०—सुनना ही होगा। सुनते हो, मैं एक नाटकमण्डली खड़ी कर रहा हूँ।

देवे०—सच ? स्वाँग कौन बनेगा ?

सदा०—उसके लिए लोगोंकी कमी नहीं होगी। परन्तु देवेन्द्र, अब मैं जाता हूँ।

देवे०—क्यों ?

सदा०—एक जरूरी काम है। इधरसे जा रहा था; सोचा, जरा तुमसे भी मिलता चलूँ। कल आऊँगा। (प्रस्थान)

देवे०—सदानन्द मेरा सच्चा मित्र है। अगर सदानन्दके लड़केसे मैं अपनी लड़कीका ब्याह कर सकता तो बड़ा अच्छा होता। मगर नहीं, सदानन्द समाजकी दृष्टिमें अपराधी है। वह विलायत जो हो आया है ! चोरी करो, वेश्या रक्खो, समाज सब सह लेगा, मगर विलायत-यात्रा अक्षम्य अपराध है ! लड़कीके ब्याहकी चिन्ताके मारे मुझे कई दिनसे नींद नहीं आई ! शरीर—

नेपथ्यमें—देवेन्द्र बाबू घरमें हैं ?

देवे०—हूँ, आइए।

[हरि, नवीन, शंकर और विनोदका प्रवेश]

नवीन—अच्छा मकान है।

शंकर—पुश्तैनी घर है, जमींदारी कायदेसे बना हुआ है।

हरि—तनिक पुराना है।

नवीन—फिर भी अच्छा मकान है।

हरि—जरा छोटा है।

नवीन—लेकिन कैसी हवा आती है! कंपनी बागका आनन्द आता है। चन्द्रकान्त बाबू जो कुछ करते थे सब अव्वल नंबरका।

विनोद—पाँच हजार रुपया कर्ज लेकर तीन गाँव खरीद डाले। उनमें उद्योग-धंधेकी बुद्धि खूब थी। बड़े ही चतुर थे।

हरि—लेकिन यह तो कहना ही पड़ेगा कि उन्होंने जायदादका बँटवारा ठीक नहीं किया।

देवे०—वे जो कुछ कर गये हैं, खूब सोच-समझकर ही कर गये हैं। उसके लिए मुझे कोई अफसोस नहीं है।

हरि—सो ठीक है। लेकिन, अगर यह कर्ज न छोड़ जाते तो बहुत अच्छा होता।

नवीन—हाँ देवेन्द्र बाबू, उस कर्जको चुकानेका क्या उपाय किया? यज्ञेश्वर बाबू तो अब और अधिक समय तक रुक नहीं सकते।

देवे०—अभी तक तो कुछ उपाय नहीं कर सका हूँ।

शंकर०—यज्ञेश्वर बाबू नालिश नहीं करना चाहते। मगर क्या करें, तीन बरस हो गये और सूद भी बढ़ता जा रहा है। फिर पाँच हजार रुपए छोड़ भी कैसे दें?

देवे०—सो तो ठीक ही है।

नवीन—यह झगड़ा चुका ही दीजिए देवेन्द्र बाबू। नालिश होनेपर देना तो पड़ेगा ही, ऊपरसे डिगरीका खर्च भी चढ़ जायगा।

देवे०—सो तो देख ही रहा हूँ। मगर रुपए दूँ कहाँसे? कुछ भी समझमें नहीं आता। बैठक, घर-गिरिस्ती तक बेच देनी पड़ेगी, और क्या! मगर ममता नहीं मानती। पुरखोंकी जायदाद जो कुछ—

हरि—सुनो, मैं एक प्रस्ताव करता हूँ। आपके सिर केवल यही खर्च तो नहीं है, लड़कीके ब्याहका बड़ा भारी खर्च भी सामने खड़ा है।

देवे०—सो तो है ही।

हरि—अगर 'एक पंथ दो काज' बन जायँ, तो क्या बुरा है? मैं कहता हूँ कि (खाँसकर) अगर—सुनिए—अर्थात्—

[केदारका प्रवेश।]

शंकर—लो, केदार बाबू भी आ गये।

केदार—साला शाइलाकका दादा है; एक पैसा भी नहीं छोड़ता। बहुत बड़ा पाजी है। और क्या कहूँ! फिर ऊपरसे कोढ़के ऊपर खाज है। उस सालेकी इतनी मजाल! कहता है—पाजी, बदमाश,—अरे बड़ी भूल हुई। सालेके दो हाथ जमा देने थे। क्यों नहीं मारा, अब यही पछतावा हो रहा है! पाजी, लुच्चा, हरामखोर, चंडाल, शैतान—

देवे०—इतने उत्तेजित क्यों हो रहे हो केदार?

केदार—उत्तेजित? सालेके तीन पन बीत गये, सिर्फ एक बाकी है, मौतके मुँहमें पैर लटकाये है—अभागा—पाजी—मूँजी। कहता है कि अगर उसके साथ तुम अपनी बेटीका ब्याह कर दो तो वह कर्जकी सारी रकम छोड़ देगा। इतनी मजाल उसकी! यही अफसोस है कि मैं सालेके दो लातें क्यों नहीं जमा आया! पेटमें आग-सी जल रही है! पाजी, कलमुँहा, डोम!

हरि—केदार बाबू, एक भले आदमीपर बेकार गालियोंकी बौछार क्यों कर रहे हैं?

केदार—गालियाँ क्यों दे रहा हूँ? गालियाँ क्यों देता हूँ, सो मैं खुद भी नहीं जानता, लेकिन देता हूँ। यही मेरा स्वभाव है। पाजीको पाजी कहनेका ही मुझे अभ्यास है।

नवीन—मगर केदार बाबू—

केदार—चुप रहो। तुम सब खुशामदी टट्टू हो! जूते उठानेवाले चमार हो! जाओ न उसके पैर चाटो और दुम हिलाओ! यहाँ क्या करने आये हो? देवेन्द्र, इन सबको दुतकार दो। ये सब कोई न कोई बुरा इरादा करके यहाँ आये हैं, इन्हें निकाल दो।

देवे०—यह क्या कहते हो केदार! भले आदमी—

केदार—ये भले आदमी हैं? क्या सिर्फ सफेद कपड़े पहन लेनेसे ही कोई भला आदमी हो जाता है? निकाल दो इन्हें!

देवे०—केदार!

केदार—अच्छी बात है; यदि ये नहीं जाते तो फिर मैं जाता हूँ। तुम्हारी और मेरी मित्रताकी बस यहीं समाप्ति है। अच्छी बात है। (प्रस्थान)

देवे०—केदार! ओ केदार! अरे चला गया। महाशयो!

नवीन—हम लोगोंने कुछ बुरा नहीं माना। वह पागल है; उसकी बातोंपर खयाल नहीं करना चाहिए।

हरि—देखिए देवेन्द्र बाबू, मैं भी वही प्रस्ताव करनेवाला था।

देवे०—क्या प्रस्ताव ?

हरि—वही जिसका जिक्र अभी केदार बाबूने किया था। देखिए, एक पंथ दो काज हो जायँगे। इधर कर्जसे पीछा छूट जायगा और उधर लड़कीके ब्याहमें खर्च न करना पड़ेगा।

देवे०—अच्छा, सोचकर देखूँगा।

शंकर—हाँ देखिएगा। ऐसे सुयोग जीवनमें एक ही दो बार आया करते हैं।

हरि—अच्छा तो अब हम लोग जाते हैं। कब जवाब दीजिएगा ?

देवे०—कल।

हरि—अच्छी बात है। (साथियोंसे) तो चलो।

नवीन—चलो। (सबका प्रस्थान)

देवे०—बड़ी विषम समस्यामें, बड़ी भारी उलझनमें डाल दिया। ब्याह ? वह तो बहुत ही बूढ़ा है। मगर क्या करूँ ? इसके सिवा और क्या उपाय है ? लेकिन नहीं, बहुत ही बूढ़ा है, और उसपर भी बड़ा ही पापी है। लड़कीको मैं एकदम पानीमें नहीं बहा दे सकूँगा। लो वे बड़े भइया आ रहे हैं।

[उपेन्द्रका प्रवेश]

उपे०—देवेन्द्र, तुम्हारी खैर-खबर लेने आया हूँ। सब कुशलता तो है ?

देवे०—हाँ बड़े भइया, शरीरसे तो एक तरहसे अच्छा ही हूँ, लेकिन मानसिक कष्ट बड़ा विकट है। संसारकी अनेक झंझटोंमें—

उपे०—सो तो है ही। संसारमें केवल दुःख है, सुखका कहीं नाम नहीं। शास्त्रकारोंने कहा है कि यह संसार माया है। लेकिन यह मायाका बन्धन काटकर निकल जाना भी कठिन है। बुद्धदेवने संन्यास ले लिया था। उनके मनमें असीम बल था। लेकिन हम पापी जीव हैं; इसलिए वैसा नहीं कर सकते। जितना बन सके, अपनेको संसारके बन्धनसे अलग रक्खो। तुम मेरे छोटे भाई हो, इसीसे तुम्हें उपदेश देता हूँ। चिन्ता मत करो।

देवे०—लेकिन चिन्ताके बिना भी तो नहीं रहा जाता। लड़की-लड़कोंको तो गला घोंटकर मारा नहीं जा सकता। फिर उसके ऊपर—

उपे०—वही तो मैं कहता हूँ देवेन्द्र भैया। श्रीकृष्णचन्द्रकी करुणाके विना जीवकी गति नहीं है। राधेकृष्ण! राधेकृष्ण!

देवे०—बड़ा लड़का बिगड़कर संन्यासी हो गया। छोटा लड़का भी खराब-खस्ता हो रहा है। एक लड़कीका ब्याह किया सो वह विधवा हो गई। और दूसरी लड़की जो है, उसके ब्याहका कोई उपाय नहीं कर पाता।

उपे०—संसारका यही नियम है। तुम्ही बताओ भाई, क्या किया जाय?

देवे०—इधर गिरिस्तीका नित्यका खर्च मारे डालता है।

उपे०—वह भी जरूरी है। गिरिस्तीका खर्च किये बिना भी नहीं चलता। दाम दिये बिना कोई कुछ देना नहीं चाहता। बहुत ही जरूरी चीजें आटा, दाल, चावल भी खरीदने जाओ तो दाम माँगे जाते हैं। बताओ, आदमी क्या करे? खर्च—नित्य खर्च चाहिए। नारायण गोविन्द!

देवे०—बड़े भइया, पिताका सब कर्ज तुम चुका दो। मैं अपने हिस्सेकी रकम धीरे धीरे अदा कर दूँगा। पहले इस लड़कीके ब्याह वगैरहके खर्चसे निपट लूँ; उसके बाद तुमको दूँगा। अगर तुम मेरे हिस्सेके पाँच हजार रुपए महाजनको दे दो, तो मेरी जान बच जाय।

उपे०—पाँच हजार रुपए? देवेन्द्र भैया, पाँच हजार रुपए नीचेकी ओर देखकर चुटकी बजाते ही नहीं आ जाते।

देवे०—इसीसे तो मैं तुमसे यह याचना कर रहा हूँ। पहले मैं इस कन्या-दायसे उद्धार पा लूँ, उसके बाद—

उपे०—देखो देवेन्द्र, तुमको मैं एक सहज उपाय बताता हूँ। यज्ञेश्वरके साथ सुशीलाका ब्याह कर दो। वह शायद सूद और असल सब छोड़ देनेको राजी हो जायगा। मैं तुम्हारी ओरसे अनुरोध करूँगा। तुम मेरे छोटे भाई हो, नहीं तो—हरे मुरारे!

देवे०—भइया, तुम यह क्या कह रहे हो?

उपे०—नहीं तो तुम्हीं बताओ, और क्या उपाय है? उसके पास बेशुमार दौलत है।

देवे०—लेकिन वह अब और कितने दिन जिएगा?

उपे०—उसके बाद सब दौलत तुम्हारी लड़कीकी हो जायगी। फिर तुम्हें

कोई चिन्ता न रहेगी। देवेन्द्र, समझ जाओ। भैया, तुम मेरे छोटे भाई हो और मैं तुम्हारा शुभचिन्तक हूँ; इसीसे कहता हूँ। गोपाल! गोविन्द! भैया, सोचकर देख लो, ऐसे मौके हमेशा नसीब नहीं होते। उसके पास बेशुमार दौलत है, वह सब तुम्हारी ही है। केशव! मधुसूदन!

देवे०—(चिन्तितभावसे) हूँ।

उपे०—सोचकर देखना। अब मैं जाता हूँ। देखो देवेन्द्र, तुम्हारे घरके आसपास घासका जंगल हो गया है। इसे साफ करवा डालो; नहीं तो बीमारी फैलनेका खटका है। तुम मेरे सगे भाई हो, इसीसे तुमको समझाता हूँ। (घूमकर) देखो, तुमको जब जो जरूरत हो, मुझे जताना। भैया, देखो, मैं प्रायः ही तुम्हारी खबर ले जाता हूँ। जय राधेकृष्ण! (प्रस्थान)

देवे०—मुझपर तुम्हारी असीम कृपा भइया! मुँहकी हँसी खर्च करनेमें कभी तुम्हें कृपण नहीं देखा। (लंबी साँस लेकर) पर ऐसी कोरी जबानी सहानुभूति भी दिखानेवाले कितने लोग हैं?

[विनयकुमारका प्रवेश]

विनय०—बाबूजी, अम्मा पुकार रही हैं।

देवे०—चल, मैं आता हूँ।

(विनयकुमारका प्रस्थान)

देवे०—बस, अब लड़कीकी हत्या करूँगा। इस समय तो दुर्गाका नाम लेकर बलिदान कर डालूँ, उसके बाद लड़कीका नसीब।

[सुशीलाका प्रवेश]

सुशीला—बाबूजी, अम्मा भीतर बुला रही हैं।

देवे०—उन्हें यहीं भेज दो।

(सुशीलाका प्रस्थान)

देवे०—समाज, तूने ऐसा नियम बना रक्खा है कि कन्या घरवालोंको अभिशापके समान जान पड़ती है। किसी तरह उसे घरसे बिदा कर पाया कि बच गये। इसीसे लड़कीके पैदा होनेपर माँ लज्जित होती है, पिताका मुँह उतर जाता है और कोई खुशी नहीं मनाई जाती। जाने दो। अब नहीं सोचूँगा। हाय, यह राह राह फिरनेवाला कुत्ता ही अगर मैं होता तो इस तरह लड़कीके ब्याहकी चिन्तामें तो न घुलना पड़ता। आँखोंमें आँसू आ रहे हैं।

[कामिनीका प्रवेश]

देवे०—(गंभीर स्वरमें) सुना, मैंने ठीक कर लिया।

कामिनी—क्या ?

देवे०—कत्ल करूँगा।

कामि०—किसे ?

देवे०—सुशीलाको !

कामि०—यह क्या कह रहे हो ?

देवे०—यज्ञेश्वरके साथ सुशीलाका ब्याह करूँगा।

कामि०—ऐं ! यह क्या ! वह तो बूढ़ा, एकदम बूढ़ा है। तीन पन बीन गये, एक पन बाकी है।

देवे०—एक पन तो है ? उसी एक पनके साथ ब्याह करूँगा।

कामि०—क्यों, चन्द्र बाबूके लड़केके साथ तो बातचीत चल रही थी।

देवे०—वे पाँच हजार रुपए माँगते हैं।

कामिनी—रुपयोंकी तदबीर करो।

देवे०—तुम्हीं बताओ, कहाँसे करूँ ?

कामिनी—कर्ज ले लो।

देवे०—वाह। तुमने बिल्कुल सहज राह बता दी—कर्ज ले लो ! जान पड़ता है, वह कर्ज चुका दोगी तुम—क्यों ?

कामिनी—कर्ज किसी न किसी तरह अदा हो ही जायगा।

देवे०—वह 'तरह' क्या है, अगर अनुग्रह करके बता दो, तो मेरा बड़ा उपकार हो। अच्छा, पहले यही बता दो कि कर्ज कौन देगा ? किससे माँगूँ ?

कामिनी—क्यों जेठजीसे माँगो।

देवे०—बड़े भैयासे ? वे कर्ज देंगे ! (सूखी हँसी हँसता है।)

कामिनी—क्यों, भाईको विपत्तिमें पड़े देखकर उन्हें दया न आवेगी ? वे भाईकी रक्षा नहीं करेंगे ?

देवे०—तुमको याद है कि यह कौन युग है ?

कामिनी—अच्छा, एक दफा माँगकर देखो न।

देवे०—माँगकर देख चुका हूँ। वह अपमान भी सह लिया है।

कामिनी—फिर ?

देवे०—फिर ! सामने देखो, आसपास देखो, पीछे देखो, इस 'फिर' का उत्तर नहीं पाओगी। ऊपरकी ओर ताक कर एक बार पुकार कर देखो कि 'भगवान् फिर ?' वहाँसे भी कोई उत्तर नहीं पाओगी। सूनसान मैदान है, सब जगह सन्नाटा है।

कामिनी—तो फिर क्या यही निश्चय रहा ?

देवे०—(रोनेके स्वरमें) हम दोनोंने सुशीलाको पैदा किया, गोदमें रखकर पाला-पोसा और उस सोनेकी पुतलीको इतना बड़ा किया। जानती हो काहेके लिए ? समाजके चरणोंमें बलिदान करनेके लिए ही न ? अब आओ, तुम उसके पैर पकड़ो, मैं उसका सिर पकड़ूँ। कसकर पकड़ो और यज्ञेश्वर उसकी गर्दनपर एक खाँड़ा मारे। उसके बाद वह खून समाज-राक्षसके मुखपर छिड़क दो।

चौथा दृश्य

स्थान—देवेन्द्रका अन्तःपुर। **समय**—प्रातःकाल।

[विनयकुमार और सुशीला]

विनय—सुशीला, तुम्हारे ब्याहकी बातचीत हो रही है ?

(सुशीला सिर झुकाये पैरके अँगूठेसे जमीन खोदने लगती है।)

विनय—तुमको वे लोग देख गये।

सुशीला—(सिर झुकाकर) हाँ।

विनय—तो फिर सब ठीक हो गया ?

सुशीला—मालूम नहीं।

विनय—तुम ब्याह करोगी ?

सुशीला—मैं नहीं जानती।

विनय—तुम्हारा ब्याह है, और तुम नहीं जानतीं ?

(सुशीला मुँह उठाती है। उसकी दोनों आँखोंमें आँसू छलक आये हैं।)

सुशीला—(सहसा) विनय !

विनय—क्या सुशीला !

सुशीला—विनय !

विनय—क्या है सुशीला ? बोलो, चुप क्यों हो गईं !

सुशीला—विनय, तुम मुझे अब भी प्यार करते हो ?

विनय—प्यार करता हूँ, यह बात तुम पूछ रही हो सुशीला ? हाँ, सो पूछ सकती हो। मैंने कभी अपने मुँहसे यह बात तुम्हारे आगे नहीं कही। परन्तु यह बात कहनेके लिए मेरे सिरसे पैर तक गर्म खूनने लहरें मारी हैं; उन्मत्त कैदीकी तरह वाणीने बंधन तोड़कर बाहर निकलना चाहा है; तो भी नहीं कही।

सुशीला—तो तुम मुझे प्यार करते हो ?

विनय—क्या तुम नहीं जानतीं ? समझ नहीं सकतीं ? अवश्य ही मैंने अपनी जबानसे यह बात नहीं कही, तो भी मेरी नजरसे, मेरी आवाज़से, मेरी हरकतोंसे तुम नहीं समझ सकीं ?

सुशीला—अपनी जबानसे क्यों न कहा ?

विनय—तुम्हारे ही भलेके लिए। क्योंकि मेरे साथ तुम्हारा ब्याह हो नहीं सकता।

सुशीला—क्यों नहीं हो सकता ?

विनय—तुम्हारे पिता यह नहीं कर सकते। कारण जानती हो ? कारण यही है कि मैं विलायत-यात्रा करनेवालेका लड़का हूँ।

सुशीला—और अगर पिताकी मर्जी न होनेपर भी मैं तुम्हारे साथ ब्याह करूँ ?

विनय—यह तुम क्या कह रही हो ? मेरे लिए तुम अपने कर्त्तव्यकी राह छोड़ दोगी ? ना सुशीला, यह नहीं हो सकता।

सुशीला—अपने कामकी जिम्मेदारी मेरे ऊपर है, तुम उसके लिए जिम्मेदार नहीं हो। मैं अब दूध-पीती बच्ची नहीं हूँ। मेरा निजका भी कुछ अधिकार है। अगर पिताकी इच्छा थी कि मुझे किसी ऐरे-गैरे बूढ़ेके गले मढ़ दें, तो उसका एक समय था। पर वह समय निकल गया। अब मैं अपने बारेमें खुद सोच-समझ सकती हूँ। इस समय वे जो चाहें सो नहीं कर सकते।

विनय—अपने पिताके प्रति क्या तुम्हारा कुछ कर्तव्य नहीं है ?

सुशीला—पिताका भी सन्तानके प्रति क्या कुछ कर्त्तव्य नहीं है ?

विनय—तुम्हारे पिता जो करते हैं, सो तुम्हारे ही भलेके लिए करते हैं।

सुशीला—विनय, तुम खूब धीर, शान्त और स्थिर भावसे यह बात कह सकते हो ? वे एक साठ बरसके बूढ़ेके साथ मेरा ब्याह करना चाहते हैं। मुझे

उस लंपटके हाथमें क्यों सौंप दे रहे हैं ? समाजके लिए, धनके लिए; मेरे सुखके लिए नहीं।

विनय—अगर यही बात ठीक हो, तो क्या तुम पिताकी इच्छाके चरणोंमें अपनी बलि नहीं दे सकतीं ?

सुशीला—अपनी बलि क्यों दे दूँ ?

विनय—इसे आत्म-त्याग कहते हैं।

सुशीला—मैं इस तरह अन्याय रूपसे आत्मोत्सर्ग नहीं करना चाहती; यह मुझसे नहीं हो सकेगा। मैं पिताको, समाजको, और ईश्वरको सन्तुष्ट करनेके लिए अपने साथ इतना अविचार नहीं कर सकती। आत्म-त्याग कहते हो विनय ! इसे आत्म-त्याग कहते हो ? किसी हितके कामके लिए अपनी बलि देनेका नाम आत्म-त्याग है। किन्तु एक खूनी जानवरके,—इस समाजके —पेटको भरनेके लिए अपने गलेमें फाँसी लगाना स्वार्थ-त्याग नहीं है। यह आत्म-हत्या है। मैं इसके लिए राजी नहीं हूँ। विनय, बोलो, मैं अगर पिताकी इच्छाके विरुद्ध तुमसे ब्याह करूँ ?

विनय—नहीं सुशीला, तुम्हारे पिताकी इच्छाके विरुद्ध हमारा ब्याह नहीं हो सकता। यह नहीं हो सकता कि मेरी प्रवृत्ति अपने कर्त्तव्यको दबा ले।

सुशीला—तो फिर यह कहो कि तुम मुझे प्यार नहीं करते !

विनय—तुम्हें प्यार करता हूँ, इसीसे तो यह कह रहा हूँ। तुम्हें इतना प्यार करता हूँ कि तुम्हें छूनेमें भी डर लगता है कि कहीं तुम मेरे हाथके स्पर्शसे मलिन न हो जाओ। तुम्हारे मुँहकी ओर ताक कर एक पैर आगे बढ़ानेमें भी मुझे यह डर लगता है कि कहीं इस रूपके पवित्र मन्दिरको कलुषित न कर डालूँ। सुनसान रातमें आकाशकी ओर ताकता हुआ तुम्हारा ध्यान करता हूँ और स्वर्गका सपना देखता हूँ। किन्तु हमारा विवाह असंभव है।

सुशीला—तो फिर हमारी यह आखरी भेंट है।

विनय—(सोचकर) वही सही परन्तु यह दंड बड़ा कठोर दण्ड है। तुमको न देखनेसे मुझे सारी पृथ्वी सूनी जान पड़ेगी, मेरा कलेजा फट जायगा। लेकिन दोनोंकी भलाईके लिए अब हम दोनोंका न मिलना ही अच्छा है। तुम पिताके प्रति अपने कर्तव्यका पालन करो। मैं उसमें विघ्न बनकर तुम्हारे सामने नहीं आऊँगा। मैं तुम्हारे कर्तव्य-पालनकी राह साफ किये देता हूँ। अच्छा सुशीला, जाता हूँ।　　(प्रस्थान)

सुशीला—(दमभर ठगी-सी खड़ी रहकर) तुम भी इस कुचक्रमें शामिल हो। अच्छी बात है, तो अब मैं ब्याह ही नहीं करूँगी। ब्याह? इन ममताहीन हृदयहीन पुरुषोंके संसर्गमें आना ही अन्याय है। इन्हें प्यार करना होगा? इनकी दासी बनकर रहना होगा? विनय, तुमने मुझे बचा लिया, सचमुच तुमने सब झंझट साफ कर दिया। मैं ब्याह ही नहीं करूँगी।

[विनोदिनीका प्रवेश]

विनो०—सुशीला?

सुशी०—कौन? दीदी!

विनो०—तुम कुछ नहीं समझ सकीं।

सुशी०—क्या नहीं समझ सकी?

विनो०—उनके उच्च हृदय और महत् विचारोंको?

सुशी०—किसके?

विनो०—विनयकुमारके।

सुशी०—उच्च हृदय और महत् विचार!

विनो०—कैसा विनय है! कैसा आत्म-त्याग है! कैसी दृढ़ता है! कुछ नहीं समझ सकीं? इतनी नन्हीं तो अब तुम नहीं हो। भगवान्! पुरुषका हृदय इतना ऊँचा हो सकता है! और हम स्त्रियाँ केवल विस्मयकी दृष्टिसे अवाक् होकर ताकती रहती हैं। इन मर्दोंके पैरोंकी धूलके समान भी तो हम नहीं हैं।

सुशी०—क्यों दीदी?

विनो०—समझ नहीं सकीं कि विनय तुमको कितना प्यार करता है। समझ नहीं सकीं कि स्वर्गको हाथमें पाकर भी उसने कर्तव्यके लिए तुम्हारे पिताके प्रति तुम्हारे कर्तव्यके लिए, उसे मुट्ठीभर धूलकी तरह फेंक दिया। यह तुम नहीं समझ सकीं।

सुशीला—अपने पिताके प्रति जो मेरा कर्तव्य है, उसे मैं जानती हूँ। किसीके समझानेकी जरूरत नहीं है।

विनोदिनी—कुछ नहीं जानतीं। कुछ नहीं समझतीं। अँगरेजी शिक्षाने तुम्हें केवल अहंकार सिखाया, वह और कुछ नहीं सिखा सकी।

सुशी०—दीदी, मैं तुम्हारा लेक्चर नहीं सुनना चाहती। जाओ।

विनो०—तुम क्या यह सोचती हो कि पिता तुम्हें कम प्यार करते हैं?

वे तुम्हें हाथ-पैर बाँधकर पानीमें बहाये देते हैं, तो क्या तुम समझती हो कि उन्हें बड़ा सुख हो रहा है ? तुम क्या समझोगी कि उनके विशाल हृदयमें सन्तानके लिए कितनी व्यथा, कितनी चिन्ता और कितनी वेदना है !

सुशी०—जो कुछ समझती हो सो सब तुम्ही।

विनो०—हाँ, मैं समझती हूँ। मैंने देखा है, कितनी ही बड़ी बड़ी रातोंमें उनकी आँखोंमें नींद नहीं आई, लम्बी लम्बी रातें जागकर और करवटें बदलकर ही उन्होंने बिता दी हैं। मैं सिरहाने बैठी पंखा डुलाती रही हूँ। मैंने अपने हाथसे उनके लिए स्वादिष्ट भोजन बनाया है; उन्होंने कौर मुँहमें रखना चाहा है और वह हाथसे गिर पड़ा है। वे बातें करते करते अनमनेसे होकर बैसिर-पैरकी बातें करने लगे हैं। उनकी चिन्तापर मैंने लक्ष्य किया है, तुमने नहीं किया।

सुशी०—तो फिर वे क्यों अपनी इच्छासे इतना कष्ट भोग रहे हैं ?

विनो०—एक दिन समझोगी। आज समझमें नहीं आता। क्यों कि इस समय तुमको केवल स्वार्थ घेरे हुए है और तुम्हारे हृदयमें अहंकार छाया हुआ है। जिस दिन त्यागकी सेना आकर इस हृदयके दुर्गसे स्वार्थको निकाल देगी, और अहंकारका कुहासा उड़ जायगा, तुम उस दिन समझोगी।

सुशी०—दीदी, पिता जानते हैं और वे दस आदमियोंसे कह भी चुके हैं कि मैं अपने मनके माफिक चलनेवाली अबाध्य लड़की हूँ। इस स्वभावको सुधारनेकी अवस्था अब मेरी नहीं रही। मैं समाजके चरणोंमें अपनी बलि नहीं दूँगी। चाहे प्राण रहें, चाहे जायँ, मेरा यही प्रण है।

विनो०—तो फिर मैं क्या कर सकती हूँ बहन। (प्रस्थान)

सुशी०—बस, कन्याके लिए एक मर्द ढूँढ़ देनेसे काम ! कन्याके गलेमें दासताकी फाँसी डाल ही देनी चाहिए ! देखूँ, किसकी मजाल है कि जबरदस्ती मेरा ब्याह कर दे।

[कामिनीका प्रवेश]

कामि०—सुशीला, यहाँ अकेले क्या कर रही है बेटी ? आ, हाथ पैर धो ले। तेरी चोटी बाँध दूँ। वर आ रहा है।

सुशी०—वर आ रहा है, या यमराज आ रहे हैं ? उसके लिए साज-सिंगारकी ज़रूरत ? शरीरमें धूल भरी रहनेपर भी यमराज किसीको नहीं छोड़ते।

कामिनी—यह तू क्या बक रही है सुशीला !

सुशीला—(सहसा) अम्मा, मैं क्या तुम्हारे घरकी आफत हूँ ?

कामिनी—यह तू क्या कहती है बेटी ?

सुशीला—नहीं तो मुझे दूर करनेके लिए इतनी तैयारी क्यों है ? मुझसे कहो, मैं खुद ही कहीं चली जाती हूँ।

कामिनी—यह क्या ! लड़कीके तनिक भी बुद्धि नहीं है।

सुशी०—खूब बुद्धि है। नहीं तो समझती कैसे ? कैसे समझ गई ! आश्चर्य हो रहा है अम्मा ? कैसे समझ गई सो नहीं कहूँगी। लेकिन समझ गई। (हँसती है, फिर सहसा गंभीर होकर) अम्मा, कोई जरूरत नहीं है। (सहसा भीतरसे एक छुरा लाकर) यह लो। मार दो गर्दनपर, (गर्दन झुकाकर) मारो।

कामिनी—क्या तू पागल हो गई है सुशीला ?

सुशी०—नहीं, मारो। एक दमसे मार डालो। तिल तिलभर काटकर मत मारो। जो लोग जातिके कसाई हैं वे भी तुमसे अच्छे हैं। वे एकदमसे मार डालते हैं, देहमें सुइयाँ चुभाकर, यन्त्रणा देकर नहीं मारते। अम्मा, यह सब तैयारी बेकार है। मैं ब्याह न करूँगी।

कामिनी—आज तू कैसी बातें कर रही है सुशीला ?

सुशी०—अम्मा, अगर मैं तुम्हारा बहुत अधिक खाये लेती हूँ, अगर तुम्हारे सुखकी राहमें बड़ा भारी रोड़ा बनी हुई हूँ, तो अब चिन्ता न करो; कल रातको तुम मुझे नहीं देख पाओगी। कुछ डर नहीं है। बाबूजीसे कहो कि मैं ब्याह नहीं करूँगी और जबर्दस्तीसे वे मेरा ब्याह नहीं कर सकेंगे। ब्याहके पहले ही—देखती तो हो यह छुरा ?—यही अपनी छातीमें भोंक लूँगी।

कामि०—(हाथ पकड़कर) बेटी, यह क्या कह रही है ! तुझे ऐसा कहना चाहिए ?

सुशीला—अम्मा, मैं जानती हूँ कि मेरा यह आचरण बड़ी ही बेशरमीका है; लेकिन क्या करूँ, मेरा कोई नहीं है। बाबूजी—जो रक्षक हैं, माता—जिसकी गोदमें सब दुःखोंसे बचनेके लिए जाकर सन्तान आश्रय पाती है, बहन, स्वजन, सब आज विमुख हैं। जब मुझे मारनेके लिए बाहर इतने खड्ग उठे हुए हैं—मा गर्दनमें तेल मल रही है और बाप बलिदानका मंत्र पढ़ रहा है, तब अपनी रक्षाके लिए मुझे आप चेष्टा करनी पड़ी। इसके सिवा और क्या करती ? इधर देखो अम्मा, सुनो, मैं यह ब्याह नहीं करूँगी, ब्याहके पहले ही आत्म-हत्या कर डालूँगी। (प्रस्थान)

कामिनी—सचमुच बेटीको हाथ-पैर बाँधकर पानीमें बहानेकी तैयारी है। नहीं, जरूरत नहीं है। जाकर उनको मना कर दूँ। (प्रस्थान)

[महेन्द्रका प्रवेश]

महेन्द्र—कहाँ ! दीदी तो यहाँ नहीं हैं।

[केदारका प्रवेश]

केदार—क्यों महेन्द्र, तुम्हारे बाबूजी कहाँ हैं ?

महेन्द्र—बाहर गये हैं।

केदार—बाहर कहाँ ? लो, जो खटका था वही हुआ। एक मिनटकी देरीमें सब काम बिगड़ गया। कब गये ?

महेन्द्र—सो तो नहीं मालूम।

केदार—कब आवेंगे ?

महेन्द्र—यह भी नहीं जानता।

केदार—जानकर ही क्या लाभ होगा ? मैं तो अब ठहर नहीं सकता। लेकिन बड़ी जरूरी बात है, बिना कहे जा भी नहीं सकता। (ऊपरकी ओर देख कर कुछ सोचकर) आः ! पृथ्वीपर ऐसी घटनायें क्यों होती हैं ? कोई विशेष आवश्यकतासे मिलने आया तो आप बाहर चले गये ! इसीसे तो कहना पड़ता है कि ईश्वर नहीं है। अगर है, तो सिद्ध करो। होता, तो ऐसा क्यों होता ! मैं श्रीरामपुरसे—इतनी दूरसे—सिर्फ एक बात कहनेके लिए दौड़ा आ रहा हूँ; मगर आप घरमें नहीं हैं। (घड़ी देखकर) अब नहीं ठहर सकता। बाईस मिनट ही रह गये हैं। तुम अपने बाबूसे कहना—नहीं, मुकद्दमेकी बात तुम क्या समझोगे ? नहीं, अच्छा सुनो, जितना याद रख सको, अपने बाबूजीसे उतना ही कह देना। कहना कि मैं सब ठीक कर आया हूँ। करने दो सालेको मुकद्दमा दायर।

महेन्द्र—किसे ? यज्ञेश्वर बाबूको ?

केदार—ऐं ! वह साला जगुआ 'बाबू' कबसे हो गया ? वह पाजी, लुच्चा, हरामजादा, शैतान भंगीसे भी बदतर है।

महेन्द्र—किन्तु वे शायद अब नालिश नहीं करेंगे।

केदार—डर गया ! जैक्सन साहब बैरिस्टरके पास मैं गया था, इसीसे डर गया ! अब करो भैया मुकद्दमा, मैं भी देख लूँ ! नालिश क्या करेगा जगुआ, दस्तावेज ही असली साबित न होगी ! डर गया साला !

महेन्द्र—जी, यह बात नहीं है केदार बाबू ! यज्ञेश्वरके साथ तो मँझली बहनका ब्याह होता है।

केदार—ब्याह ! क्या ! अरे भाई ब्याह कैसा ? (छड़ी रखकर) विधिपूर्वक ब्याह है ?

महेन्द्र—आज बातचीत पक्की हो जायगी । वे लोग लड़की देखने आएँगे, ' शुभदृष्टि ' होगी ।

केदार—शुभदृष्टि कैसी ! अरे भाई कैसी शुभदृष्टि ? कुछ बात न चीत, एकदम एक साँसमें लड़कीको देखना, पसंद करना, शुभदृष्टि और बातचीत पक्की—सब हो जायगा ? और मुझे पता भी नहीं ! बातचीत पक्की हो जायगी, कब ?

महेन्द्र—आज ।

केदार—(कुछ सोचकर) ऐसी बात है ? तो यह ब्याह नहीं होगा। आज यहीं भोजन करूँगा। जाकर कह दे। जो हो, वही खा लूँगा, तैयारीकी जरूरत नहीं। सुशीला कहाँ है ?

महेन्द्र—देख नहीं पड़ती ।

केदार—इस ब्याहके लिए वह तो राजी नहीं है न ?

महेन्द्र—सो मैं क्या जानूँ।

केदार—वह राजी भी हुई तो क्या, यह ब्याह नहीं होने पावेगा। लो वह सुशीला भी आ गई।

[सुशीलाका प्रवेश]

केदार—तुम्हारा ब्याह है बेटी ?

[सुशीला चुपचाप दरवाजा पकड़े केदारकी ओर देखती खड़ी रहती है।]

केदार—यह ब्याह नहीं होगा। मैं किसी तरह नहीं होने दूँगा। बेटी, इस ब्याहके लिए तुम राजी तो नहीं हो ?

[सुशीला चुप रहती है]

केदार—समझ गया। महेन्द्र, यह ब्याह नहीं होगा। सुशीला, बेटी, तुम अपने बाबूजीसे कहो कि वे अगर तुमकी भोजन-वस्त्र नही दे सकते तो मैं दूँगा। मेरे बेटी नहीं है। तुम मेरी बेटी होगी। चलो बेटी, मेरे घर चलो।

(सुशीला रो देती है)

केदार—रो मत बिटिया, यह ब्याह नहीं होगा। महेन्द्र, कागज-कलम तो ले आओ। जाओ तो। (महेन्द्रका प्रस्थान)

(केदार हँसता है, फिर सिर हिलाता है।)

केदार—समझ गया देवेन्द्र, सब समझ गया। मेरी अवस्था तुम ले लो और अपनी अवस्था मुझे दे दो। फिर जरा इस समाजको दिखा दूँ कि क्या करना चाहिए। यह समाज कसाई है, शैतान, क्षमा करना बेटी, तेरे सामने ही गालियाँ दे रहा हूँ। ना, लेडीके सामने गालियाँ देना ठीक नहीं हुआ। ना, हमारा समाज बहुत ही अच्छा और साधु है; वही पुरातन आर्य ऋषियोंका समाज। वह कहीं खराब हो सकता है ?

[कागज कलम लेकर महेन्द्रका प्रवेश]

केदार—ले आये ? लाओ। नहीं, तुम्हीं लिखो।

महे०—क्या लिखूँ ?

केदार—लिखो, " यह ब्याह नही होगा। " लिख रक्खो। पीछे सबको दिखा देना। मेरे मुँहकी ओर क्या ताक रहे हो ? लिखो।

(महेन्द्र लिखता है)

केदार—क्या लिखा, देखूँ। (कागज लेकर) " यह ब्याह नहीं होगा। " देखूँ, कलम देखूँ। (कलम लेकर) ये मेरे दस्तखत हैं—" श्रीकेदारनाथ भट्टाचार्य। " (दस्तखत करता है) बस, यह कागज रख छोड़ो। पीछे सबको दिखा देना। दस्तखत कर चुका हूँ। अब कोई डर नहीं है बेटी, दस्तखत कर चुका हूँ। तुम निश्चिन्त रहो।

महेन्द्र—खूब आदमी है ! (सबका प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—देवेन्द्रके घरकी बाहरी बैठक। **समय**—तीसरा पहर।

[उपेन्द्र, देवेन्द्र, यज्ञेश्वर, सदानंद और उपेन्द्रके भक्तगण]

उपे०—तो फिर अब देर काहेकी है देवेन्द्र ? आशीर्वादकी रीति कर डालो; शास्त्रमें लिखा है—शुभस्य शीघ्रम्।

हरि—हाँ शीघ्रम्। क्यों नवीन ?

नवीन—स्वयं प्रभू ही कह रहे हैं।

शंकर—क्या सोच रहे हो देवेन्द्र बाबू ?

देवेन्द्र—नहीं, सोचता कुछ नहीं हूँ। घरके भीतरसे किसीके रोनेकी आवाज आ रही है क्या ?

उपे०—कहाँ, नहीं तो।

हरि—देवेन्द्र बाबू, आपकी कन्याने बहुत कुछ पुण्य दान और शिवकी पूजा की है, जो उसे ऐसा वर मिल रहा है।

शंकर—कुबेरकी जैसी सम्पत्ति है।

नवीन—संपत्ति, ओः, उसका क्या शुमार है !

विनोद—उम्रके बारेमें आप कुछ न सोचिए।

हरि—जरा बालोंमें खिजाब लगा लें तो कौन कहेगा कि इनकी उम्र पचीस वर्षसे अधिक होगी ?

सदा०—मगर दाँत भी बँधवाने होंगे !

शंकर—क्या सोच रहे हो देवेन्द्र बाबू ? अब देर काहेकी है ?

देवे०—ना—यही—तो आशीर्वाद करूँ सदानन्द ?

सदा०—तुम्हारी इच्छा।

देवे०—सदानन्द, जबतक तुम जीसे यह काम करनेके लिए नहीं कहते तबतक मैं कुछ नहीं कर सकता। तुम कह दो भाई, तो मैं खुशीसे आशीर्वाद करूँ।

उपे०—मैं कहता हूँ न।

नवीन—स्वयं प्रभू जो कह रहे हैं !

देवे०—(सदानन्दसे) ना, तुम कहो।

सदा०—मैं क्या कहूँ ? तुम्हारी लड़की है और तुम्हारा दामाद है।

देवे०—तब भी एक शुभ कार्य कर रहा हूँ; इसलिए जब तक तुम प्रसन्न मन और प्रसन्न मुखसे सम्मति नहीं दे देते, तबतक मनमें एक खटका-सा लगा हुआ है। तुम जी खोलकर कहो, आशीर्वाद करूँ ? सदानन्द, तुम मेरे लड़कपनके साथी और मित्र हो। पर इस समय तुम चुप हो ! तुम्हारे मुखमें हँसी देखे बिना मैं इस शुभकार्यमें हाथ नहीं डाल सकता। बोलो भाई !

सदा०—अगर बोलनेको ही कहते हो तो सुनो। अपनी लड़कीका यह ब्याह करनेके बदले यदि तुम उसे हाथ-पैर बाँधकर पानीमें बहा दो, तो अधिक अच्छा हो।

हरि—क्यों सदानन्द बाबू ?

शंकर—यह आप क्या कह रहे हैं ?

उपे०—मैं कह रहा हूँ देवेन्द्र, क्या सदानन्दका कहना मेरे कहनेसे बढ़कर हो गया ? मैं तुम्हारा सगा और बड़ा भाई हूँ।

नवीन—स्वयं प्रभू कहते हैं।

सदा०—उपेन्द्र बाबू, नहीं जानता कि आप क्यों कह रहे हैं। लेकिन आपके स्नेहके पर्देके भीतर जान पड़ता है जैसे कोई कुटिल कटाक्ष खेल रहा है। आपके स्वरसे यह तो समझमें आ रहा है कि आप एक छुरेपर धार रख रहे हैं, मगर यही समझमें नहीं आता कि उस छुरेकी धारसे आप किसका गला काटेंगे ? क्या अपनी भतीजीको ही जिबह करेंगे ? पर यह तो मैं अपनी कल्पनामें नहीं ला सकता हूँ।

हरि—आप कहते क्या हैं सदानन्द बाबू ? आप महर्षिसे ऐसी बाते कहते हैं ?

सदा०—तुम लोगोंके प्रश्नका उत्तर देना मुझे जरूरी नहीं जान पड़ता। तुम क्षुद्र जीव हो। लेकिन आप—उपेन्द्र बाबू, आप—इतने नीच हृदयके और भण्ड हैं ? बड़े दुःखकी बात है कि और कोई भलमंसीकी गाली मुझे ढूँढ़े नहीं मिली।

नवीन—महाप्रभुको—

उपेन्द्र—चुप रहो नवीन। सदानन्द बाबू, दस आदमी अगर मुझपर भक्ति श्रद्धा रखते हैं, तो इसमें मेरा क्या दोष ? वृक्षकी परिणति फलमें होती है। अगर दस आदमी उस फलको खाकर वृक्षकी बड़ाई करते हैं तो वह दोष क्या वृक्षका है ?

सदा०—उपेन्द्र बाबू, माफ कीजिएगा, मैंने आपको गाली दी है। कारण, आप चाहे जैसे हों,—देवेन्द्रके बड़े भाई हैं। पहले कभी मैंने आपको गाली नहीं दी। पर अब इन बातोंको जाने दो। देवेन्द्र, इस ब्याहके लिए तुम्हारी लड़की राजी है ?

देवे०—मालूम नहीं।

उपे०—ब्याहके लिए लड़कीका राजी होना कैसा ?

हरि—हाँ, यह तो एक नई बात है।

नवीन—अरे भाई, जब महाप्रभु कह रहे हैं—

(सदानन्द एक बार उपेन्द्रकी ओर घृणासे देखते हैं।)

सदा०—देवेन्द्र, अगर तुम लड़कपनमें ब्याह कर देते, तो लड़कीकी म्मति लेनेकी जरूरत न होती। लेकिन जब १५-१६ वर्षकी अवस्था तक मने उसका ब्याह नहीं किया, उसे उच्च शिक्षा दिलाई, तब कमसे कम सके भविष्यके विषयमें उसका जो मत हो उसकी उपेक्षा तो नहीं की ा सकती।

यज्ञे०—सदानन्द बाबू, आप इस शुभकार्यमें क्यों बाधा डाल रहे हैं ? वेन्द्र बाबू, मैं मय सूद असल भी छोड़े देता हूँ।

सदा०—देवेन्द्र, पहले कन्याकी राय ले लो।

उपे०—कन्या इस बारेमें कभी 'नहीं' न करेगी। हमारी राय ही उसकी ाय है।

(कई आदमियोंके साथ केदारका प्रवेश। सबके हाथोंमें लाठियाँ हैं।)

केदार—यह लो मैं आ गया। ठीक समयपर आया।

सदा०—अरे यह तो केदार है। भाई, यह क्या है ?

केदार—यह फिर बताऊँगा। पहले इस पाजी कुत्तेको—(यज्ञेश्वरसे) उठो भैया बन्ने, निकलो यहाँसे !

यज्ञे०—यह क्या ! देवेन्द्र बाबू—

केदार—कहता हूँ, उठ साले अकालकूष्माण्ड, सड़े कटहल, खट्टे आम ! उठ—निकल।

देवे०—यह क्या करते हो, केदार !

केदार—चुप रहो, नहीं तो झगड़ा हो जायगा। (यज्ञेश्वरसे) उठ साले लद्दू ाँधन, बौरहे कुत्ते, उठ, नहीं तो मारता हूँ सिरपर लठ ! सालेका एक पैर ंगाजलमें और दूसरा यमराजके मुँहमें है, फिर भी इस समय, इस पनमें, ब्याह करने आया है ! उठ साले लुच्चे, लफंगे, टुच्चे, कमीने, पाजी—

यज्ञे०—तुम मुझे गालियाँ क्यों दे रहे हो ?

उपे०—केदार, तुम तो यह गँवारों जैसा व्यवहार कर रहे हो !

केदार—अच्छा तो, यहाँ महर्षि भी मौजूद हैं ! यही तो सोच रहा था के देवर्षि हैं मगर महर्षि कहाँ हैं ? (यज्ञेश्वरसे) उठ साले, नहीं तो अभी ूते पड़ने लगेंगे।

सदा०—अजी ओ केदार !—

केदार—सदानन्द बाबू, आप कुछ भी न कहिए। मुझे ट्रेनके लिए देर हो रही है। मगर इन सब सुअरके बच्चोंका यहाँसे निकाले बिना नहीं जाऊँगा। सीधी बात है। ये साले सीधी तरह कहनेसे उठ जायँ तो अच्छा, नहीं तो फिर मुझे लाठीसे काम लेना पड़ेगा। बिल्कुल सीधी बात है। उठेगा साले काले बिलौटे, कि दो चार लातें खानेको ही जी चाहता है ?

हरि—यह तो बड़ा अन्याय है ! भले आदमीका ऐसा अपमान !

केदार—चुप रहो ! तुम सब साले खुशामदी टट्टू, चपड़कनातिये, चंडूल, चमगीदड़ हो !

शंकर—केदार बाबू, हम सबको गालियाँ दे रहे हो ?

केदार—चुप रह उल्लू !

शंकर—क्या, तुम मुझे उल्लू बना रहे हो ?

केदार—बना क्या रहा हूँ, तुम तो बने-बनाये उल्लू हो !

यज्ञे०—देखो, तुम लोग भले आदमीकी तरह रहो, मारपीट न करना।

शंकर—फिर अगर उल्लू कहोगे तो—(आस्तीनें चढ़ाता है)

केदार—हाँ, हाँ, फिर कहता हूँ—उल्लू !

शंकर—फिर कह रहे हो ?

केदार—हाँ कहता तो हूँ !

शंकर—अच्छा, कहो, देख लूँगा।

केदार—मुझे देर हुई जा रही है। सदानन्द बाबू, अब मेरा अपराध नहीं है ? (यज्ञेश्वरसे) निकल सड़े आमके छिलके, उठ। (घुटना मारता है।)

यज्ञे०—घुटना मार रहे हो ?

केदार—हाँ मारता हूँ। क्या मालूम नहीं पड़ता ? लो फिर मारा। (घुटना मारता है) अब मालूम पड़ा ? (साथियोंसे) भाइयो, चलाओ लाठी।

यज्ञे०—अच्छा जाता हूँ, मगर याद रक्खो, नालिश करूँगा,—छोड़ूँगा नहीं। देख लूँगा।

(यज्ञेश्वर और उपेन्द्रके भक्तोंका प्रस्थान। हरि और शंकर 'देख लेंगे' कहते हुए जाते हैं।)

केदार—अच्छा देख लेना सालो, तुम सब साले कुत्ते हो। और यह साला यज्ञेश्वर, दो दिनमें मरनेवाला है, फिर भी ब्याह करना चाहता है !

महर्षिजी, और आप तो अपने दलसे बिछुड़ कर मैले कपड़ेके फटे चीथड़ेकी तरह पड़े ही रह गये ! घर जाइए, और जाकर गीता पढ़िए।

उपे०—इसके लिए तुम्हें जेल जाना पड़ेगा। (प्रस्थान)

केदार—एक सौ दफे जानेको तैयार हूँ। अपने कर्त्तव्यका पालन तो किया; फल देना ईश्वरके हाथमें है।

सदा०—केदार, लोग गीताका पाठ करते हैं, लेकिन भाई, तुम गीताका अनुष्ठान करते हो। आओ, तुम्हें गलेसे लगा लूँ।

(केदारको गलेसे लगाकर प्रस्थान।)

केदार—अब ठीक तीन मिनटका समय बाकी है।

देवे०—यह तुमने क्या किया केदार ?

केदार—कुछ बोलो मत, नही तो झगड़ा हो जायगा। १२ और ५=१७; अभी ट्रेन मिल जायगी। देवेन्द्र, अगर फिर तुमने इस जगुआके साथ लड़कीका ब्याह करना चाहा, तो अच्छा न होगा। बस, कह दिया। अगर तुम यह ब्याह करोगे तो समझ रक्खो, मेरे एक ही घूँसेसे तुम्हारी लड़की विधवा हो जायगी। (प्रस्थान)

(देवेन्द्र अकेला सोचमें बैठा रहता है)

---

*

*

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—देवेन्द्रका घर। **समय**—सन्ध्याकाल।

[देवेन्द्र और सदानन्द]

देवे०—केदारको एक महीनेकी कैद हो गई ? कहते क्या हो !

सदा०—उसे जेल न जाना पड़ता; दस पंद्रह रुपये जुर्माना ही होता। मगर केदार तो एक अद्भुत आदमी है, अपने हाथों जेल गया।

देवे०—कैसे ?

सदा०—हाकिमने पूछा, तुमने मारा था ? केदारने उत्तर दिया, "हाँ खूब मारा।" हाकिमने कहा, "इसके लिए तुम्हें अफसोस है ?" केदारने कहा, "जी बिल्कुल नहीं; जरूरत पड़ेगी तो फिर मारूँगा !"

देवे०—बेचारा मेरे कारण जेल गया। बापने लड़कीकी हत्या करनेके लिए खड्ग उठाया था, केदारने सामने आकर उस खड्गका वार अपनी छातीपर ले लिया। बापके हाथसे लड़कीको बचानेके लिए—ओः !

सदा०—तुम आज नौकरीपर नहीं जाओगे ?

देवे०—जेल गया ! मेरे लिए !

सदा०—तुम्हारी छोटी लड़कीका बुखार कैसा है ?

देवे०—मेरे लिए, मेरी लड़कीके लिए जेल !—और मैं उस लड़कीका बाप हूँ—ओः !

सदा०—डाक्टर आये थे ?

देवे०—समाज !

सदा०—यह क्या ! एकटक क्या देख रहे हो ?

देवे०—खूब समाज है ! सदानन्द, हिन्दू समाजमें गरीबोंके घर लड़कियाँ क्यों पैदा होती हैं, जानते हो ? बता सकते हो ? इस नीच बाजारमें स्वर्गकी देवियाँ क्यों उतर आती हैं ? उनका अपराध क्या है ? क्या अपराध है ?

सदा०—समाजको दोष क्यों देते हो देवेन्द्र, दोष समाजका नहीं, हम लोगोंका है। पढ़ने-लिखनेकी उमरमें ब्याह क्यों करते हो ?

देवे०—मेरा ब्याह तो पिताजी कर गये थे।

सदा०—बापकी भूलसे लड़के कष्ट पाते हैं, यह कुछ नई बात नहीं।

देवे०—ना, उनका कुछ दोष नहीं है। उन्होंने माके द्वारा मेरी राय पूछी थी। मुझे अच्छी तरह याद है, मैंने स्वीकार-सूचक सिर हिलाया था। तब सोचा था कि ब्याहके इस नन्दन-वनमें केवल पारिजात फूलते हैं, कोयल गाती है, और केवल सुगंध-स्निग्ध मलय पवनसे मन मगन हो जाता है। तब क्या मैं यह सब जानता था ! ओः अब इस फन्देसे निकलनेका उपाय कोई नहीं है। निकलनेका उपाय नहीं है ! कोई भी उपाय नहीं है सदानन्द ?

सदा०—उपाय तुम्हें एक दिन बता चुका हूँ।

देवे०—ना, उसके लिए हिम्मत नहीं पड़ती। मगर क्यों ? हिम्मत क्यों नहीं पड़ती ? मैं भी तो मनुष्य हूँ ! ना, छोड़ दूँगा। ठीक कर लिया कि छोड़ दूँगा।

सदा०—क्या ?

देवे०—मगर उसके काबूमें हूँ, उसने जकड़ रक्खा है ना, मुझसे न हो सकेगा। क्यों नहीं हो सकेगा ? सदानन्द !

सदा०—देवेन्द्र, तुम ये कैसी बातें कर रहे हो ?

देवे०—सदानन्द, मैं एक भीख माँगता हूँ। दोगे क्या ?

सदा०—क्या चाहते हो भाई ?—बोलो, बोलो, संकोच क्यों करते हो ? देवेन्द्र, तुमने मुझे अबतक पहचाना नहीं। अगर मेरी आधी संपत्ति भी तुम माँगो तो मैं हँसते हुए तुम्हें दे सकता हूँ। अब तक दी नहीं, इसका कारण यही है कि तुमसे कहनेका साहस नहीं हुआ और तुमने कभी माँगा भी नहीं। किन्तु एक बार माँग कर तो देखो भला !

देवे०—ना, मैं तुम्हारा धन नहीं चाहता। लेकिन उससे बढ़कर कीमती चीज चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ तुम्हारे पुत्रको, और तुम ले लो मेरी कन्या।

सदा०—समझ गया, मगर मित्र तुमने ऐसी चीज माँगी जो मैं नहीं दे सकता। पुत्रका ब्याह, उसकी इच्छा अनिच्छापर निर्भर है। वह मेरे हाथमें नहीं हैं।

देवे०—मुझे मालूम है, तुम्हारा पुत्र राजी है।

सदा०—राजी है ? तो फिर देवेन्द्र, तुम्हारी कन्या आजसे मेरी कन्या है।

देवे०—सदानन्द, तो फिर जाओ। बस, जाओ, तब तक मैं अपने मनको मजबूत बना लूँ।

(सदानन्द जाता है। देवेन्द्र रोने लगता है।)

[उपेन्द्रका प्रवेश]

उपे०—देवेन्द्र, भाई, मैं आया हूँ, उसी मामले—

देवे०—बड़े भइया, मैंने निश्चय कर लिया है। मैं सुशीलाका ब्याह सदानन्दके लड़केके साथ करूँगा। अब और बातचीतकी जरूरत नहीं।

उपे०—यह क्या ? तुम क्या पागल हो गये हो ?

देवे०—शायद।

उपे०—समाजको—

देवे०—छोड़ दूँगा।

उपे०—अवश्य तुम्हारी कन्याके ऊपर तुम्हारा पूरा दावा है। फिर भी अगर तुम सनातन धर्मकी रक्षा करके काम कर सकते, तो शायद अच्छा होता। यह पुरातन—

देवे०—होगा पुरातन। भइया, तुम्हीं बताओ, यह समाज मेरा क्या उपकार कर रहा है जो मै उसके लिए सारे सुभीते छोड़ दूँ और उसकी गुलामी करूँ ? मैंने तो कभी नहीं देखा कि समाजने कभी मेरे लिए कुछ भी रिआयत की हो। मैं तो देखता हूँ, सदासे वह मेरे ऊपर अपना दावा ही जताता आ रहा है। पहले यह बात जरूर थी कि मुहल्लेके एक आदमीकी विपत्तिको दस आदमी बँटा लेते थे। लेकिन आजकल तो घरके पास ही पड़ौसी मरा पड़ा रहता है, कोई झाँक कर भी नहीं देखता। यह समाज अगर रहा तो क्या, और छूट गया तो क्या।

उपे०—स्वार्थत्याग करो देवेन्द्र, स्वार्थत्याग। अहो, यह स्वार्थत्याग कैसा मधुर है ! मैं स्वार्थत्यागको पूरी तौरसे निभानेकी स्पर्धा तो नहीं करता, केवल उसके लिए कोशिश करता रहता हूँ। नारायण ! श्रीहरि ! गोविन्द ! !

देवे०—स्वार्थत्याग करूँ ? किसके लिए भइया ? इस समाजके लिए ? मैं अपना सुख और कन्याका सुख भी शायद बलि चढ़ा देता, यदि उस बलिके मांससे समाजका पेट भर जाता। खा खाकर समाजके पेटका घेरा बहुत बढ़ गया है। उसका उच्छृंखल अत्याचार भी बहुत बढ़ गया है। मैं अब उसे नहीं मानूँगा।

उपे०—मगर सोचो देवेन्द्र, अपने प्रति भी तो तुम्हारा कुछ कर्त्तव्य है विलायत हो आनेवाले बापके बेटेके साथ ब्याह करनेसे समाज तुमको 'अलग' कर देगा।

देवे०—कर देगा तो समाजसे अलग ही रहूँगा। इसमें अब कुछ अपमान भी नहीं है, बल्कि गौरव है। जहाँ विद्यासागर, राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, जैसे महापुरुष समाजसे अलग किये जाते हैं वहाँ अलग होनेमें लज्जा नहीं है। समाज अलग किसे करता है? जो अन्त्यजोंको गले लगाता है; जिसका बाप अपघातसे मरता है और वह प्रायश्चित्त नहीं करता; जिसका हृदय विधवा बालिकाके दुःख देखकर फटने लगता है; जो धनके अभावसे कन्याका ब्याह अधिक अवस्था तक नहीं कर सकता; जिसकी स्त्री खानेका सुभीता न होनेके कारण मेहनत-मजूरी करने घरसे बाहर निकलती है; जो विद्या पढ़नेके लिए विलायत जाता है; उसीको समाज अलग करता है। लेकिन जो लंपट है, व्यभिचारी है, जालिया है, चोर है, स्त्री-हत्या करनेवाला है, जो तीन तीन बार जेल काट आया है, जो सैकड़ों निरीह प्रजाओंके घर जलाकर, शरीकदारका घर खुदवाकर, दो चार खून कराकर, उन्हीं रक्तरंजित हाथोंसे रुपये लुटा सकता है, उसके सिरपर यह सनातन समाज सादर स्नेहका हाथ फेरता है। विद्यासागर तो समाजसे अलग कर दिये गये, और व्यभिचारी ढोंगिये परमधार्मिक समझे गये। भइया, मैं ऐसे समाजसे अलग ही रहूँगा।

उपे०—अगर कहीं तुमने शास्त्र पढ़े होते देवेन्द्र! मैं यह स्पर्धा नहीं करता कि सब संस्कृत शास्त्र मैं पढ़ चुका हूँ, मगर हाँ हिन्दुओंके कुछ प्रधान प्रधान शास्त्र मैंने अवश्य पढ़े हैं।

देवे०—उसका फल तो आँखोंके आगे ही मौजूद है। इन दोमेंसे एक चुन लेना कुछ कठिन नहीं है और अब मैंने चुन लिया है।

उपे०—देवेन्द्र!—

देवे०—ना भइया, मैं तुमसे कोई उपदेश नहीं लेना चाहता। जाओ, अपना उपदेश वैष्णव सम्प्रदायमें बाँटो। मुझे नहीं चाहिए।

उपे०—तो फिर तुम्हारी जो इच्छा हो वही करो। मधुसूदन! नारायण! श्रीहरि! गोविन्द!

(प्रस्थान)

देवे०—अगर इस विषयमें कुछ दुविधा भी थी बड़े भइया, तो वह तुम्हारे आचरणसे दूर हो गई। अब मुझे कोई दुविधा नहीं है।

[कामिनीका प्रवेश]

देवे०—सुशीलाकी माँ, उत्सव करो, आनन्द मनाओ।

कामि०—क्यों?

देवे०—मैं बन्धमुक्त होने जा रहा हूँ। समाजका बन्धन तोड़कर, पिंजरा तोड़कर बाहर निकलने जा रहा हूँ। मेरे साथ तुम भी चलोगी?

कामि०—कहाँ?

देवे०—उस जगह। उस नीले आकाशके तले, उस सूर्यके प्रकाशमें, उस खुली हुई पवित्र हवामें। देखो, मैं सदानन्दके पुत्रके साथ सुशीलाका ब्याह करूँगा।

कामि०—किसके साथ?

देवे०—सदानन्दके पुत्र विनयकुमारके साथ।

कामि०—निश्चय कर लिया?

देवे०—हाँ, निश्चय कर लिया। जो कुछ थोडा-सा सन्देह रह गया था वह बड़े भइयाके साथ बातचीत करनेसे मिट गया। ब्याहकी तैयारी करो।

कामि०—इससे बढ़कर सुखकी बात और क्या हो सकती है? बेटीकी भी यही इच्छा जान पड़ती है।

देवे०—तुम राजी हो?

कामि०—तुम्हारी इच्छा ही मेरी इच्छा है। जाऊँ, सुशीलासे जाकर कहूँ।　　(प्रस्थान)

देवे०—गृहिणी, मनका आनन्द क्या तुम दबाकर रख सकती हो? मुँहसे कैसी पतिभक्ति दिखाकर कह गई कि " तुम्हारी इच्छा ही मेरी इच्छा है " पर जब यज्ञेश्वरके साथ ब्याहका प्रस्ताव हुआ था तब आँखोंमें आँसू क्यों भर लाई थीं? और अब विनयके साथ ब्याहकी बात सुनकर तो जैसे आनन्द हृदयमें समाता ही नहीं है। इतना मोटा शरीर न होता तो निश्चय ही तुम नाचने लगतीं।　　(प्रस्थान)

[कामिनी और विनोदिनीका प्रवेश।]

कामिनी—सुशीला कहाँ है बेटी?

विनो०—हाथ-पैर धोकर आती होगी।

कामि०—एक अच्छी खबर सुनेगी बेटी ?

विनो०—क्या अम्मा ?

कामि०—तुम्हारे बाबूजी विनयके साथ सुशीलाका ब्याह करनेके लिए राजी हैं।

विनो०—(उत्साहके साथ) राजी है ?

कामिनी—हाँ, मैं सुशीलासे कहने जाती हूँ। (प्रस्थान)

विनो०—(स्वगत) सुशीलाको कैसी खुशी होगी ! और मैं ? ना, उसका सुख ही मेरा सुख है; विधवाके लिए और कोई कामना नहीं है। भगवान् ! मैंने यह कठिन व्रत धारण किया है, इसे पूर्ण करना तुम्हारे हाथ है।

[सुशीलाका प्रवेश]

विनो०—सुशीला, एक खुशखबरी सुनेगी ?

सुशी०—सुन चुकी हूँ दीदी, लेकिन अब वह न होगा।

विनो०—क्या न होगा ?

सुशी०—मैं उनसे ब्याह नहीं करूँगी।

विनो०—यह क्या बहन ! तो फिर किससे ब्याह करेगी ?

सुशी०—मैं ब्याह ही नहीं करूँगी।

विनो०—यह क्या सुशीला ? औरतकी जातिका ब्याह किये बिना काम चल सकता है कहीं ?

सुशी०—क्यों नहीं चल सकता दीदी ?

विनो०—मइयारे ! कहती है, क्यों नहीं चल सकता। इस देशमें रामचन्द्रके युगसे अब तक सभी स्त्रियाँ ब्याह करतीं आ रही हैं।

सुशी०—मैं तो मानती हूँ कि उससे भी पहलेसे स्त्रियाँ ब्याह करती आ रही हैं। मगर इस देशमें उन स्त्रियोंपर कैसा अत्याचार होता आ रहा है दीदी, यह भी तो सोचो। रामचन्द्रने विना किसी अपराधके, केवल प्रजाका मनोरंजन करनेके लिए, सीताको घरसे निकाल दिया और सोचा कि बड़े भारी स्वार्थत्यागका काम किया। जान पड़ता है, प्रजाके मनोरंजनके लिए वे अपनी माका सिर काटनेको भी तैयार हो जाते। धर्मराज युधिष्ठिरने चौसरके खेलमें द्रौपदीको भी दावपर लगा दिया। धर्मराज थे न ! इस जातिका सर्वनाश न होगा तो किसका होगा ? वंशपरंपरासे करोड़ों नारियोंकी आहें उनके आँसुओंके जलमें मिलकर भाप बनकर आकाशमें छा रही हैं,

और वे आज अभिशापके रूपमें उतरकर इस जातिके ऊपर विषकी वर्षा कर रही हैं। और ऐसा होगा क्यों नहीं? यह इतनी बड़ी स्वार्थ-साधु जाति है कि जिसे अबला कहकर पुकारती है, उसीके ऊपर वंशपरंपरासे अत्याचार करती चली आ रही है। इस जातिका मटियामेट न होगा तो और किसका होगा?

विनो०—सुशीला, तू एक साँसमें न जाने कितनी बातें कह गई। लेकिन बहन, तूने एक ही ओर दृष्टि डाली है। पुरुष यद्यपि स्त्री-जातिके ऊपर होनेवाले इस अविचार और अत्याचारके जिम्मेदार हैं, तो भी सोचकर देखो, हमारे देशमें स्त्रियोंको इतने गुणोंसे अलंकृत किसने किया है? उन्हीं सताई गईं, त्यागी गईं सीतादेवीने मरनेके समय भी कहा कि 'जन्मजन्मान्तरमें मुझे रामचन्द्र ही पति मिलें।' यह बात इस देशके सिवा और किस देशकी, किस जातिकी, कौन स्त्री आजतक कह सकी है?

सुशी०—और किस देशका पुत्र पिताकी आज्ञासे माताका सिर काट सका है? दीदी, अब और कुछ न कहो, क्रोधके मारे मेरा मारा शरीर जला जा रहा है। हमारे देशके पुरुषोंने पतिको ही नारीका एकमात्र प्रेय, ध्येय और श्रेय कहा है। उन्होंने स्त्रियोंके आगे यही आदर्श खड़ा कर रक्खा है। अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिए, समाजने इस अभागिनी नारी-जातिके वास्ते ही सब कठोर नियम बनाये हैं। पुरुष वेश्या रक्खें, अस्सी सालकी अवस्थाके बाद तक दस दफे बालिकाओंसे ब्याह करें, स्त्रियोंको लातोंसे मारें, समाज सब सह लेगा। केवल नारी-जातिके लिए यह कड़ा नियम है कि वह पुरुषोंके सुखकी सामग्री बनी रहे, उसने जरा भी चूँ की कि सर्वनाश हो गया।

विनो०—बहन, पुरुषोंकी जाति अगर खराब ही है, तो हम क्यों अपना आदर्श छोड़ दें? पुरुष-जाति अगर स्वार्थपर है, तो तुम उसे महत् हृदयवाला बनाओ। वे लोग कुछ हमारे शत्रु तो हैं ही नहीं कि हम उनसे उनके अन्यायका बदला चुकाने बैठ जाएँ। बहन, नम्रता धारण करो, सहनशीलता ग्रहण करो। सहनेके लिए ही स्त्रीका जन्म है। दूसरेके लिए जीवन उत्सर्ग करना ही उसका जीवन है। ईश्वरने पुरुष और स्त्रीको समान बनाकर नहीं पैदा किया है। मेरा विश्वास है कि इस दुर्दिनमें भी हिन्दू लोग जो अपना सिर ऊँचा कर सकते हैं सो इस नारी-जातिके चरित्र और धर्मके बलसे ही। बहन, वह चरित्र और धर्मका बल न गवाँ देना।

सुशी०—रहने दो, अब और कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है। वह तुमसे हो सकेगा, मुझसे नहीं हो सकता। तुम्हें विश्वास है, मुझे नहीं है। बस। (प्रस्थान)

[महेन्द्रका प्रवेश]

महे०—यह नोटोंका बंडल है, अब मेरे बराबर कौन है ? अबकी बार—रामलाल बाबूको देख लूँगा—

विनो०—महेन्द्र !

महे० —(चौंक कर) कौन ? दीदी ? (नोट छिपाता है ।)

विनो०—क्या छिपा रहे हो ?

महे०—कुछ नहीं, वह दस्तावेज है ।

विनो०—काहेकी दस्तावेज ?

महे०—ऐं—नहीं—यह दस्तावेज ही है ।

विनो०—झूठ कहते हो ।

(महेन्द्र चौंक उठता है ।)

विनो०—देखूँ, तुम्हारे हाथमें क्या है ? (आगे बढ़ती है ।)

महे०—नोट हैं ।

विनो०—कहाँ पाये ? सच बताओ ।

महे०—खेलमें जीते हैं ।

विनो०—झूठ कह रहे हो । महेन्द्र, तुम बरबाद हुए जा रहे हो । यह क्या तुम उचित कर रहे हो ? कहाँ तो तुम्हें चाहिए कि अपने बापकी गरीबी देखो, दरिद्रतामें, दुर्दिनमें, उनकी सहायता करो, और कहाँ तुम बैठे बैठे जो कुछ बापके पास है उसे भी उड़ाये दे रहे हो । जुआ खेलते हो । मालूम नहीं, उसके लिए रुपये कहाँसे लाते हो । शायद चोरी करते हो ।

महे०—नहीं दीदी ।

विनो०—तो जाल करते हो । एकटक मेरी ओर क्या ताक रहे हो ? कोई जाल किया है ?

महे०—तुमने कैसे जान लिया ? हाँ, जाल किया है । जुआ खेलनेके लिए रुपये चाहिए थे, इसीसे किया है । लो ये रुपये रक्खो ।

विनो०—मैं ऐसे रुपये हाथसे नहीं छूती । तुम जाओ, जिसके रुपये हों उसे फेर आओ । उससे माफी माँगकर आओ । उसके बाद आँसुओंके जलसे हाथ धो कर मेरे पास आओ, नहीं तो न आओ । याद रक्खो, ऐसा न करोगे तो तुम्हें अपनी माकी गोदमें भी जगह नहीं मिलेगी । (प्रस्थान)

महे०—ना, वही करूँगा । फेर दूँगा । माके मनको चोट नहीं पहुँचाऊँगा ।

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—जेलखाना। **समय**—दोपहर।

केदार—(स्वगत) यह एक तरहसे बुरा नहीं है। इसमें एक तरहकी विचित्रता है। घानी घुमाता हूँ और तेल निकलता है। इसी तरह अगर माथा घुमाता, तो बुद्धि निकलती। माथा जिसके नहीं है, उसके लिए माथा एक तरहकी व्यथा ही है। सालेके दो हाथ जमा देनेसे मन खूब आनन्दित है। उसका सिर फोड़नेके बाद ईंटके रोड़े फोड़े तो क्या हर्ज है! वह कैदी आँखें मूँदे घानी घुमा रहा है, जैसे उसके सुखका उपभोग कर रहा है। ऐं! वह तो गाना भी गा रहा है!

[दूरपर एक कैदी गाता है]

घूम घूम री घानी, मेरी घूम घूम री घानी।
आँख मूँद कर खीच रहा हूँ, घूमें छप्पर छानी ॥ मेरी० ॥
वर्षा शीत निदाघ बीच यह घूमें धरती नानी।
चंद्र सूर्य ग्रह तारा घूमें, तू तो छोटा प्रानी ॥ मेरी० ॥
जन्म-मरणके चक्करमें हम, घूम घूमकर मरते।
क्यों घूमें सो नहीं जानते, कैसी है नादानी ॥ मेरी० ॥
विविध जन्मके बीच खींचकर प्राणोंको हम लाते।
कठिन प्राण फिर भी वैसे हैं, कैसी ऐंचातानी ॥ मेरी० ॥
इन प्राणोंकी भूख न तब भी जाती यह अचरज है।
क्यों ऐसा होता सो जानें, वह ईश्वर ही ज्ञानी ॥ मेरी० ॥
जो हो, फिर भी आँखें तेरी ओर लगी जो होवें।
तो घूमना धन्य यह मानूँ, हो मेरी मनमानी ॥ मेरी० ॥

[कैदीका प्रवेश]

केदार—तुम कौन हो?

कैदी—एक कैदी हूँ।

केदार—देखनेसे तो तुम कोई भले आदमी जान पड़ते हो। तुम कैसे जेलमें आये? जान पड़ता है, तुम भी मेरी ही तरह कोई अच्छा काम करके आये हो?

कैदी—नहीं बाबू, मैं यहाँ खराब काम न करनेके कारण आया हूँ।

केदार—कैसे ?

कैदी—सुनिए । उपेन्द्र बाबूने कहा कि मुझे उनके जाली वसीयतनामेका गवाह बनना पड़ेगा । पर मैं असल वसीयतनामेका गवाह था, जाली वसीयतनामेका गवाह कैसे बनता ? इसीसे बिगड़ कर उपेन्द्र बाबूने एक झूठे मुकद्दमेमें मेरा चालान करा दिया और मुझे जेल आना पड़ा । वे वकील हैं, सब कुछ कर सकते हैं । ओः ! बड़ी प्यास लग रही है ।

केदार—हूँ, मामला तो बड़े मतलबका है । पर असल वसीयतनामे और जाली वसीयतनामेका मतलब मैं नहीं समझा ।

कैदी—उपेन्द्र बाबूके पिता जो वसीयतनामा लिख गये थे उसमें उनकी जायदादके तीन हिस्से छोटे लड़के देवेन्द्रके नाम और एक हिस्सा बड़े लड़के उपेन्द्रके नाम था । यह भी लिखा था कि उनकी दोनों लड़कियाँ गुजारेके लिए हर महीने प्रामिसरी नोटोंका सूद पावेंगी। मैं और तीन आदमी और—गदाधर, किशोरी और हरिपद—उस वसीयतनामेके गवाह थे । उसके बाद उपेन्द्र बाबूने और एक जाली वसीयतनामा तैयार किया । ओः, अब बोला नहीं जाता, थोड़ा-सा पानी दो ।

केदार—ओहो ! समझ गया । अब—अब बड़ा मजा होगा । बस, जेलके बाहर निकलने भरकी देर है । हाँ, उन तीन गवाहोंके नाम क्या बताये ? यज्ञेश्वर, हरिपद, और क्या ?

कैदी—यज्ञेश्वर नहीं,—गदाधर, हरिपद, और किशोरी ।

केदार—हाँ हाँ किशोरी । वे तीनों आदमी कहाँ हैं ?

कैदी—गदाधर और हरिपद काशीवास करते हैं और किशोरी शायद मुजफ्फरपुरमें हैं । मेरे जेल आनेके पहले वे वहाँ वकील थे । थोड़ा जल दो, गला सूखा जा रहा है । अब नहीं बोला जाता भाई, जल दो ।

केदार—आओ । जल क्या, तुम्हारी मियाद पूरी होनेके दूसरे ही दिन मेरे घर तुम्हारी जल-पानकी—आलबुखारेका शरबत पीनेकी—दावत रही । ओः ! यह मामला है ! अब मेरी बराबरी कौन कर सकता है ? (नाचता है ।)

कैदी—यह क्या ! तुम क्या पागल हो ?

केदार—(नाचता हुआ) ता धिन्ना धिक धिक धिन्ना । गवाहोंके नाम क्या बताये ? गदाधर—श्यामापद—

कैदी—श्यामापद नहीं: हरिपद ।

केदार—हाँ हाँ हरिपद। और कौन ?

कैदी—किशोरी।

केदार—ठहरो, याद कर लूँ। श्यामापद, हरिपद, किशोरी।

कैदी—श्यामापद नहीं, गदाधर।

केदार—हाँ हाँ। गदाधर, गदाधर, किशोरी।

कैदी—दोनोंका नाम गदाधर नहीं है, एकका नाम हरिपद है।

केदार—हाँ हाँ। हरिपद—हरिपद।

कैदी—तुम्हें याद न होंगे।

केदार—क्यों ?

कैदी—बीस दफे कह चुका, गदाधर—हरिपद—किशोरी।

केदार—ठीक है। गदाधर—हरिपद—किशोरी। गदाधर—हरिपद—किशोरी। गदाधर—हरिपद और एक नाम क्या ?

कैदी—किशोरी—किशोरी।

केदार—हाँ हाँ, किशोरी,—किशोरी।

कैदी—हाँ।

केदार—लेकिन इन सबका पूरा नाम चाहिए। गदाधर कौन ?

कैदी—गदाधर सेन रिटायर्ड सबजज।

केदार—गदाधर सेन रिटायर्ड सबजज। गदाधर सेन रिटायर्ड सबजज। सबजज—सबजज—सबजज। और ?

कैदी—हरिपद मल्लिक, सामुकके जमींदार।

केदार—और ?

कैदी—किशोरीलाल बनर्जी, मुजफ्फरपुरके वकील। जरा-सा जल दो, मेरा कलेजा मुँहको आ रहा है।

केदार—अभी देता हूँ। श्यामापद मल्लिक रिटायर्ड सबजज, सबजज।

कैदी—श्यामापद मल्लिक किसने कहा ?

केदार—फिर ?

कैदी—गदाधर सेन।

केदार—ठीक है, ठीक है। गदाधर सेन—गदाधर सेन।

कैदी—जरा-सा पानी दो न।

केदार—उसके बाद किशोरीलाल मल्लिक सामुकके वकील—क्यों न ?

कदी—बिल्कुल नहीं। किशोरीलाल बनर्जी, मुजफ्फरपुरके वकील। जरा-सा पानी दो, मैं प्यासके मारे मर रहा हूँ।

केदार—लो अभी देता हूँ। किशोरीलाल बनर्जी, मुजफ्फरपुरके वकील। गदाधर सेन—रिटायर्ड सबजज। आओ, तुम क्या खाओगे? खाली जल पियोगे? या शरबत और फालूदा पियोगे? ना, ये चीजें तो यहाँ मिल नहीं सकतीं। क्या करूँ?

कैदी—मुझे सिर्फ पानी दो, तो बड़ा उपकार करो।

केदार—अच्छा चलो। किशोरी मल्लिक, रिटायर्ड सबजज। रिटायर्ड—

कैदी—वही फिर किशोरी मल्लिक? किशोरीलाल बनर्जी।

केदार—हाँ हाँ, बनर्जी बनर्जी।

कैदी—मुजफ्फरपुरके वकील।

केदार—वकील, वकील। याद जरूर करूँगा चाहे जितने दिन लग जायँ।

(दोनोंका प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—देवन्द्रका घर। **समय**—दोपहर।

[देवेन्द्र और कामिनी]

कामि०—लड़की ब्याह नहीं करना चाहती, तो मैं क्या करूँ बताओ?

देवे०—ब्याह करना नहीं चाहती?

कामि०—नहीं।

देवे०—अच्छा!

कामि०—अब क्या उपाय किया जाय?

देवे०—काहेका उपाय? यह तो अच्छी बात है। खर्च बच गया।

कामि०—काहेका खर्च?

देवे०—ब्याहका खर्च। यह जरूर है कि सदानन्द रुपये न लेते, लेकिन ब्याह करनेमें और भी तो खर्च होता है। वही खर्च बच गया।

कामि०—तुम यह क्या कह रहे हो?

देवे०—बहुत ठीक कह रहा हूँ।

कामि०—तो लड़कीका ब्याह नहीं करोगे?

देवे०—लड़की ब्याह करनेको राजी नहीं है, मैं क्या करूँ ?

कामि०—तुम समझाकर कहो।

देवे०—ना, यह न होगा।

कामि०—तो क्या लड़की कुआँरी रहेगी ?

देवे०—हाँ, जब ब्याह नहीं होता है, तब लड़की कुआँरी ही कहलाती है

कामि०—बिरादरीके लोग अलग कर देंगे।

देवे०—उसके लिए तो मैं पहलेहीसे तैयार बैठा हूँ।

नेपथ्यमें—देवेन्द्र, घरमें हो ?

देवे०—आओ भाई सदानन्द ! (कामिनीसे) अब तुम भीतर जाओ।

(कामिनीका प्रस्थान)

देवे०—जाने दो, ब्याहका झगड़ा ही मिट गया।

[सदानन्दका प्रवेश]

सदा०—सुना, तुम्हारा शरीर अस्वस्थ हो गया था।

देवे०—नहीं, विशेष कुछ नहीं। हाँ, मन खराब होनेसे बीच बीचमें तबीयत कुछ सुस्त-सी अवश्य हो जाया करती है।

सदा०—मन ही क्यों इतना खराब रहता है ?

देवे०—यही लड़की-लड़कोंपर स्नेहकी अधिकता और ममताके कारण।

सदा०—ओ, तुम सुशीलाके बारेमें चिन्ता करते हो ?

देवे०—ना, उसने ब्याह नहीं किया सो अच्छा ही किया, और एक परिवारमें जाकर उसे तोड़-फोड़कर मिट्टीमें नहीं मिला दिया। ये सब लड़कियाँ पाप हैं,—जंजाल हैं,—आफत हैं,—सर्वनाश हैं। हम लोग दूध पिला-पिला कर काली नागिनें पालते हैं। ओः !

सदा०—सचमुचमें क्या तुम्हारा यही मत है ?

देवे०—और नहीं तो क्या है !

सदा०—तुम ठीक उलटी बात कह रहे हो।

देवे०—क्या करूँ, ठगकर सीखा है।

सदा०—देवेन्द्र, मैं तुमपर भक्ति रखता हूँ; मगर तुम इतनी चंचल बुद्धि रखते हो ! इतने साधारण मामलेमें विचलित हो उठते हो !

देवे०—कुछ नहीं; खूब समझ लिया है, कुछ जरूरत नहीं है।

सदा०—काहेकी ?

देवे०—कन्याके ब्याहकी।

सदा०—उसकी विशेष जरूरत है।

देवे०—क्यों ?

सदा०—इस मामलेके बीचमें जन्मान्तरवाद और आध्यात्मिकताको न लाकर यह समझना मुनासिब है कि लड़की-लड़के हवा खाकर नहीं जीते; उनके आगेके खाने-पीनेका ठिकाना मा-बापको ही कर देना चाहिए।

देवे०—मा-बापका क्या अपराध है ?

सदा०—पुत्र-कन्याओंको संसारमें लानेकी जिम्मेदारी मा-बापपर ही है। सन्तानका जीवन, बचपन और भविष्य बनाना माता-पिताके ही हाथमें है। सन्तानको आगे चल कर दुःख मिले, तो उसके जिम्मेदार मा-बाप ही हैं। सन्तान अगर भूखों मरे तो उसके लिए संसारमें अगर कोई जिम्मेदार है तो मा-बाप ही हैं।

देवे०—उसके बाद ?

सदा०—लड़कोंको तो शिक्षा दिलाकर उनके भोजन-वस्त्रका प्रबन्ध कर देते हो, पर लड़कियोंके लिए कुछ नहीं करोगे ? लड़कीका ब्याह कर देना क्या है, एक तरहसे उसकी नौकरीका प्रबन्ध कर देना ही तो है। ब्याह करना ही होगा, लेकिन—

देवे०—लेकिन—रुक क्यों गये ?

सदा०—स्त्रियोंके ऊपर ईश्वर ही रूठे हैं; हम क्या करें ? पर हाँ, मनुष्यसे जहाँ तक बन सकता है वहाँतक उनके लिए प्रयत्न करना उसका कर्त्तव्य है। यह असुविधा और दुःख दूर करनेकी चेष्टा करना क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं है ?

देवे०—कुछ समझमें नहीं आया।

सदा०—स्त्रियोंकी जाति दुर्बल है, वे अबला है; लेकिन फिर भी मनुष्य हैं। पुरुषोंकी तरह उनके हृदयमें भी अपमान और उपेक्षासे चोट पहुँचती है। पुरुषोंकी अपेक्षा उनमें बुद्धि कम है; लेकिन उनकी भी राय कोई चीज है। उनके मतको एकदम तुच्छ नहीं माना जा सकता। जब लड़की छोटी थी, तब उसकी कोई राय नहीं थी; उस समय तुम जबर्दस्ती भी उसका ब्याह कर सकते थे। लेकिन जब तुमने १५-१६ वर्षकी अवस्था तक कुआँरी रक्खी

है, तब उसकी भी एक राय हो चुकी है, और उसकी रायको तुम तुच्छ नहीं समझ सकते। अगर तुम सुशीलाकी रायके खिलाफ विनयके साथ उसका ब्याह करना चाहते, तो मैं उसे न होने देता।

देवे०—लेकिन लड़की जब हिन्दूके घर पैदा हुई है, तब उसे क्या हिन्दूकी लड़कीका ऐसा आचरण करना मुनासिब नहीं है?

सदा०—सावित्री भी हिन्दूके घरमें पैदा हुई थी। सयानी लड़कीकी कुछ राय होगी ही। हिन्दूशास्त्रकार मूर्ख नहीं थे।

[महेन्द्रका प्रवेश]

महे०—बाबूजी!

देवे०—क्या है?

महे०—अम्माने कहा है, कुमुदिनीकी तबीयत बहुत खराब हो रही है।

देवे०—यह तो वह मुझसे भी कह गई है।

महे०—वह सन्निपातमें अट-सट बक रही है।

देवे०—नहीं तो क्या साइंसका लेक्चर देती?

महे०—अम्मा आपको बुला रही हैं।

देवे०—मैं अभी नहीं आ सकता, जा।

सदा०—ना देवेन्द्र, भीतर जाओ।

देवे०—मैं किसीका नौकर नहीं हूँ।

सदा०—सिविल सर्जनको बुलाऊँ?

देवे०—ना-ना-ना। कितनी दफे कहूँ, तुम अब अपने घर जाओ।

सदा०—अच्छा जाता हूँ। तुम जरा घरके भीतर हो आओ, औरतें घबरा रही होंगी। (प्रस्थान)

देवे०—परेशान कर डाला। ओः, क्यों मैंने ब्याह किया था!

[विनोदिनीका प्रवेश]

विनो०—बाबूजी!

देवे०—आता हूँ, चलो। मौत भी नहीं आती? (प्रस्थान)

विनो०—तबीयत अच्छी न रहनेसे बाबूजीका मिजाज कुछ चिड़चिड़ा-सा हो गया है। पहले तो इस तरह बात-बातमें नहीं खिसियाते थे।

चौथा दृश्य

स्थान—देवेन्द्रका घर। **समय**—रात।

[आँधी पानीके साथ ओले गिरते हैं; बादल गरजता है। घरमें पलँगपर बीमार लड़की लेटी है। कामिनी पास बैठी हुई ऊँघ रही है। देवेन्द्र खड़े हुए हैं।]

देवे०—कैसी भयंकर रात है! मूसलधार पानी पड़ रहा है, साथ ही साथ ओलोंकी बौछारसे किवाड़े झनझना उठते हैं। दूरपर बादल जंजीरमें बँधे हुए बाघकी तरह, क्रोधके मारे गम्भीर स्वरसे गरज रहे हैं। ऐसा अन्धकार है कि जान पड़ता है, आकाशसे सृष्टि लुप्त हो गई है। है केवल यह मेरा टूटा-फूटा घर और हम कई एक अभागे आदमी। सचमुच ही मेरे नजदीक संसारमें और कोई नहीं है। जब यह आँधी थम जायगी, अन्धकार मिट जायगा, जब सूर्यदेवकी किरणोंसे फूल खिल उठेंगे, पक्षी चहक उठेंगे, जब वसन्तकी हवा धीरे धीरे हरियालीके ऊपरसे बहेगी, फूलोंकी महकसे कुंज भर जायँगे, तब भी मेरा कौन होगा? संसार? वह तो एक बार भी फिरकर मेरी ओर नहीं देखता। और बड़े भइया? केवल सुनता हूँ कि हम दोनों भाई हैं और एक ही माके पेटसे पैदा हुए हैं। संसारमें केवल दो पुत्र थे; एक फकीर होकर चला गया, दूसरा शिक्षाके अभावसे उच्छृंखल होकर लुच्चा बन गया। तीन लड़कियाँ हैं, उनमें एकका तो जीवन बेकार हो गया—विधवा हो गई, दूसरीके ब्याहका ही सुभीता नहीं लगता, तीसरी बीमार पड़ी है। स्त्री दिनभर कुलीकी तरह मेहनत करती है। इस समय नींदने दया करके उसे अपनी गोदमें आश्रय दे दिया है। यह बीमार लड़की मरना चाहती है। और, मैं यह सब देख रहा हूँ।

कुमुदिनी—अम्मा! अम्मा!

कामि०—(जागकर) क्या है बेटी?

कुमुदि०—पानी।

देवे०—लाता हूँ। (लानेके लिए जाना चाहता है)

कुमु०—ना—ओः—बाबूजी!

देवे०—ले बेटी, देता हूँ। (जल देता है)

कुमु०—ना, अब नहीं सहा जाता—अम्मा!

कामि०—क्या है बेटी, मैं तो तेरे पास ही हूँ।

कुमु०—दीदी !

देवे०—दीदी सो रही है। पुकारूँ ?

कुमु०—नहीं बाबूजी, जरूरत नहीं है। बाबूजी, वे लौटकर आवें तो उनसे कहना—ओः !

देवे०—बड़ी यन्त्रणा हो रही है ?

कुमु०—नहीं बाबूजी, अभी सब दुख-दर्द समाप्त हो जायगा।

कामि०—बेटी, यह क्या कहती हो ! भगवान्! बड़ी विपत्ति है।

कुमु०—अम्मा ! (गलेसे लिपट जाती है)

कामि०—मेरी बेटी ! (छातीसे लगा लेती है)

कुमु०—अम्मा ! बाबूजी !

कामि० (देवेन्द्रसे) डाक्टरको बुलाओ।

(कुमुदिनी फिर पलँगपर पड़ जाती है)

कुमु०—बाबूजी, बड़ा कष्ट हो रहा है।

कामि०—हाय हाय ! यह क्या ! बेटी, हाथ-पैर क्यों पटकती है ? अजी डाक्टरको बुलाओ।

देवे०—डाक्टर ! सुनती नहीं हो, बाहर क्या हो रहा है ! इतनी रातको ऐसी आँधी पानीकी रातमें डाक्टर कहाँ मिलेगा ? सौ रुपये देनेसे भी कोई डाक्टर नहीं आवेगा और उतने रुपये देनेका भी तो सुभीता नहीं है।

कुमु०—डाक्टरकी अब कुछ जरूरत नहीं है बाबूजी ! खिड़की खोल दो।

(देवेन्द्र खिड़की खोल देता है। ठंडी हवा आकर दिया बुझा देती है। साथ ही कुमुदिनीके भी प्राण निकल जाते हैं।)

देवे०—(अन्धकारमें) बेटी कुमुदिनी !

कामिनी—मेरी बेटी, मेरा लाल, कुमुदिनी—

(लाशको छातीसे लगा लेती है।)

देवे०—जोरसे पकड़ रक्खो, देखो, कहीं भाग न जाय। इस घोर अंधकारमें मौका पाकर दगा देकर कहीं भाग न जाय।

कामि०—हाय ! भाग ही गई। (रोती है)

देवे०—छोड़ दिया ? पकड़कर नहीं रख सकी मूर्ख ? अच्छा तो चलो, इस अन्धकारमें हम भी दौड़ लगावें और देखें कि कहाँ भाग गई।

(पागलकी तरह प्रस्थान)

नेपथ्यमें—कुमुदिनी ! कुमुदिनी ! बेटी !

*

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—देवेन्द्रका अन्तःपुर। **समय**—सन्ध्याकाल।

[देवेन्द्र अकेला टहल रहा है]

देवे०—एक आफतसे छुटकारा नहीं मिला कि दूसरी सिरपर सवार हो गई। जलमें ही जाकर जल रुकता है। जब गिरने लगा हूँ, नीचे, तब कौन रोक सकता है? जितना ही गिरता हूँ उतना ही जैसे देर नहीं सही जाती। लो, वह सुशीलाकी माँ आ रही है। आओ न, मैं अचल स्थिर हूँ। क्या करोगी, करो।

[कामिनीका प्रवेश]

कामि०—अजी सुनो तो, आँखोंके सामने ही पुलिसके आदमी लड़केको पकड़ ले गये?

देवे०—हाँ, ले गये।

कामि०—तुमने कुछ नहीं कहा?

देवे०—ना।

कामि०—चुपचाप खड़े देखा किये?

देवे०—हाँ देखा कि कैसा अद्भुत दृश्य है!

कामि०—तुमने रोका नहीं?

देवे०—ना।

कामि०—क्यों?

देवे०—इस डरसे कि कहीं पुलिसके आदमी लड़केको छोड़ न दें।

कामि०—इस डरसे?

देवे०—और नहीं तो क्या!

कामि०—तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है।

देवे०—बहुत संभव है।

कामि०—नहीं, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, तुम उसको बचाओ।

देवे०—किसे?

कामि०—लड़केको। यह क्या हँस रहे हो ?

देवे०—मजेमें हो तुम श्रीमतीजी, कोई भी चिन्ता नहीं है। संसारका हाल कुछ भी नहीं जानतीं। भगवान्! तुमने मुझे भी स्त्रीका जन्म क्यों नहीं दिया ? ओः, यह तो सौ गर्भोंके बराबर यन्त्रणा भोग रहा हूँ।

कामि०—बच्चेका क्या होगा ?

देवे०—बच्चा जेल जायगा। चोरीकी विद्या बड़े मजेकी विद्या है, अगर कोई पकड़ न ले; लेकिन पकड़ ही लिया गया। (दाँतोंसे ओठ चबाकर) जाओ जेलमें,—सरकारने कैसा अच्छा कानून बनाया है! खूब बनाया है!

कामि०—लड़केको जेल हो जायगी तो मैं नहीं जियूँगी।

देवे०—तो मर जाओ। हाँ, मर ही जाओ। एक लड़का संन्यासी हो गया और दूसरा था, सो जेल जा रहा है। एक लड़की अच्छी तरह दवा न होनेसे मर गई, दूसरी तन्दुरुस्त सुपात्र लड़का न मिल सकनेसे राँड़ हो गई। और एक लड़की है सो वह कुआँरी रहना चाहती है। तुम बाकी हो, सो गलेमें फाँसी लगा लो। और मैं ? मैं भी ऐसी ही कोई राह ढूँढ़ लूँगा। दयामय! तुम्हारा भी कैसा कौशल है! खानेको नहीं है तो भी ब्याहका शौक है! ब्याह करो और फिर उसका फल भोगो। अपने कियेका फल भोग रहा हूँ। किसीको दोष नहीं देता।

कामि०—लड़का जरूर जेल जायगा ?

देवे०—जान तो यही पड़ता है।

कामि०—अच्छा बैरिस्टर खड़ा किया जाय तो छूट सकता है।

देवे०—हाँ, ऐसा हो तो छूट सकता है।

कामि०—तो फिर अच्छा बैरिस्टर खड़ा करके मुकद्दमेकी पैरवी कराओ।

देवे०—हाः हाः हाः! तुम मजेमें हो गृहिणी, कुछ भी कठिन नहीं जान पड़ता! कुछ नहीं जान पड़ता! जानती हो कि बैरिस्टर खड़ा करनेमें रुपये खर्च होते हैं ? वे रुपये शायद तुम दोगी, क्यों ?

कामि०—उधार ले लो।

देवे०—वाह! इस टेढ़ी समस्याको तुमने तो तीरकी तरह सीधा कर दिया! खूब सहज और सीधा उपाय बता दिया! हाः हाः हाः!

कामि०—हाय हाय, लड़का जेल जा रहा है, और तुम हँस रहे हो!

देवे०—ना, यह मेरा अन्याय है। अब नहीं हँसूँगा। देखती हो कि

पिताका कर्ज चुकानेमें आधा घर बेच डाला है ! उधार ? मैंने खुद कभी उधार नहीं लिया, और न कभी लूँगा, लड़का भले ही जेल चला जाय।

कामि०—तो फिर क्या होगा ? (रो देती है)

देवे०—(कठोर स्वरसे) जाओ, दिक मत करो।

(कामिनीका प्रस्थान)

देवे०—ब्याह किया था, उसका फल भोग रहा हूँ। किसीको दोष नहीं देता। पिताने ब्याहके पहले मुझसे पूछा था और मैंने ब्याह करना मंजूर किया था। तब सोचा था, प्यारीके मुखचन्द्रका अमृत पीनेसे ही पेट भर जायगा। और—और क्या सोचा था ? सब सपना-सा जान पड़ता है। उस समय क्या यह जानता था ? ना, जैसा काम किया वैसा फल पाया। खूब !—ईश्वर !—खूब !

[विनोदिनीका प्रवेश]

देवे०—कौन ? विनोदिनी ! क्या चाहती हो ? ओः, तुम जिस लिए आई हो, सो मैं जानता हूँ। वह नहीं हो सकता।

विनो०—बाबूजी, महेन्द्रको—

देवे०—कुछ कहो मत। कहोगी तो मैं आत्महत्या कर लूँगा।

[सुशीलाका प्रवेश]

देवे०—तुम भी आ गईं ! क्यों ? क्या चाहती हो ?

सुशी०—मैं अपने लिए कुछ नहीं चाहती बाबूजी, महेन्द्रको—

देवे०—निकलो ! निकलो !

सुशी०—मुझे दुतकार दीजिए, मगर महेन्द्रको बचाइए। मैं आपके पैरों पड़ती हूँ। (पैरोंपर गिरती है)

देवे०—हट जा, मुझे छूना नहीं।

सुशी०—बाबूजी ! (पैर पकड़ती है।)

देवे०—ओः ! अब नहीं रहा जाता। कहाँ तक दबाऊँ ? यह यन्त्रणा तो छाती फाड़े डालती है। यह कैसे देख सकता हूँ ? बेटी विनोदिनी ! बेटी सुशीला ! सोचती क्या हो ? क्या सोचती हो ? तुम्हारा बाप—ओः !—

(तेजीके साथ प्रस्थान)

[गहनेका सन्दूक लेकर कामिनीका प्रवेश]

कामि०—विनोदिनी !

विनो०—क्या है अम्मा ?

कामि०—ये गहने लेकर सदानन्द बाबूके पास जा तो बेटी, जाकर कह कि ये गहने बेचकर रुपये ला दीजिए।

विनो०—यह क्या अम्मा ?

कामि०—इन गहनोंके रहते मेरा लाल जेल नहीं जा सकता। क्या एकटक ताक रही है ! ले जा।

विनो०—तुम कहती थीं कि ये गहने तुम्हें तुम्हारी माने दिये थे। जिन्दगी-भर इन्हें अपनेसे जुदा न करनेकी बात भी तुम कई बार कह चुकी हो।

कामि०—कह चुकी हूँ। तब लड़केपर यह आफत आनेका हाल नहीं मालूम था। यह नहीं सोचा था कि प्राणोंसे भी प्रिय बनकर, अँधेरे घरका हीरा होकर, शत्रु मेरे घरमें सेंध देगा। संदूकमें इन गहनोंके रहते मेरा बच्चा जेल जायगा, और मैं माँ होकर खड़ी देखती रहूँगी ? ले जा बेटी !

विनो०—बाबूजीसे पूछ लिया है ?

कामि०—ना, जरूरत नहीं है। उनका दिमाग खराब हो गया है।

विनो०—मगर—

कामि०—इसमें कुछ अगर-मगर मत कर बेटी, बड़ी भारी विपत्तिमें पड़कर ही मैं अपनी माँके दिये गहने, अपना हृदय, अपने शरीरका आधा खून, बेचे डालती हूँ। अपने बेटेके लिए—बेटी, मुँह न फेर; अपने बेटेके लिए देती हूँ, और किसीके लिए नहीं। ले जा बेटी।

(विनोदिनी सिर झुकाये गहनेका संदूक लेकर जाती है)

कामि०—(घुटने टेककर, हाथ जोड़कर) मधुसूदन, इस विपत्तिसे उबारो।

दूसरा दृश्य

स्थान—देवेन्द्रके सोनेका कमरा। **समय**—रात।

[देवेन्द्र अकेले नींदकी हालतमें कमरेमें टहल रहे हैं।]

देवे०—रुपये ! रुपये ! रुपये ! संसारमें और कुछ नहीं है, केवल रुपये चाहिए। लड़का रुपये चाहता है, लड़की रुपये चाहती है, जोरू रुपये चाहती है, स्वजन रुपये चाहते हैं, चोर रुपये चाहता है, राजा रुपये चाहता है, फकीर रुपये चाहता है, खुशामदी लोग रुपये चाहते हैं। मनुष्य इन्हीं रुपयोंके लिए माता पृथ्वीका पेट फाड़ता है, अथाह सागरके भीतर गोते

लगता है और अगर उससे हो सकता तो आकाशमें भी घूमकर देख आता कि चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदिको तोड़-फोड़कर गलाकर टकसालमें रुपये ढाले जा सकते हैं या नहीं ! वाह री दुनिया ! सारे मनुष्य संसारमें इन्हीं रुपयोंकी चिन्तामें डूबे देख पड़ते हैं। लेकिन जब मनुष्य इन रुपयोंके समुद्रमें गोता लगाकर बाहर निकलेगा, तब एक रुपया भी उसके शरीरमें लगा हुआ नहीं देख पड़ेगा। बम् भोलानाथ ! देखता हूँ, मेरे इन पाँच हजार रुपयोंपर घर भरकी नजर लगी हुई है। सबकी इच्छा है कि चीलकी तरह झपट्टा मारकर इन्हें ले जायँ। ठहरो, मैं सब इन्तजाम किये देता हूँ। (लोहेका संदूक खोलता है) ऐसी जगह छिपाकर रक्खूँगा कि कोई न निकाल सके ! कहाँ रक्खूँ ? कल ही अदालतमें जाकर जमा कर आऊँगा। बाप-दादेका घर था, बापका ही किया ऋण भी था। उसीके लिए आधा घर बेचा है। कुछ अपने लिए तो बेचा नहीं है। तो इसे कहाँ रक्खूँ ? इस जगह रक्खूँ ? नहीं, धरतीमें गाड़कर रक्खूँ ? अच्छी बात है। (बाहर जाकर लोहेका साबर ले आता है) देखूँ, यह जगह ठीक है कि नहीं। (साबरसे जमीन खोदता है। फिर उसके शब्दसे चौंक पड़ता है।) यह क्या ! (चारों ओर देखकर) ना, इससे आवाज होगी। नहीं, यह ठीक नहीं है। (साबर रखकर) अच्छा, आलमारीमें रक्खूँगा। किसीको शक भी न होगा। लोहेका संदूक होनेपर भी आलमारीमें कौन पाँच हजार रुपये रक्खेगा ? अच्छा, आलमारी खोलता हूँ। (चाबी लेकर आलमारीका खटका खोलता है।) इस जगह रक्खूँ ? नहीं, इस जगह रक्खूँ। अरे इसके भीतर यह क्या है ! भीतर यह क्या है ! इसके भीतर यह चोर-घर है ! वाह, यह तो बड़े मजेकी बात है ! तो फिर इसीके भीतर रक्खूँ—बस। (नोटोंका बंडल उसी चोर-घरके भीतर रखता है) उसके बाद यह लो। (बन्द करता है) उसके बाद यह लो। (आलमारीके पट बंद करता है) उसके बाद यह लो। (चारों ओर देखकर आलमारीका खटका बंद करता है) आसपास कोई नहीं है, किसीने नहीं देखा। अब किसकी मजाल है जो इन रुपयोंको निकाल सके ! हाः हाः हाः। (लेटकर फिर सो जाता है)

[विनोदिनीका प्रवेश]

विनो०—बाबूजी अभी जैसे किसीसे बातें कर रहे थे। (सोते देखकर) ओः, नींदमें चलने-फिरनेका और बातें करनेका बाबूजीको अभ्यास-सा हो गया है। (प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—उपेन्द्रका घर। **समय**—सन्ध्याकाल।

[उपेन्द्र और उनके भक्त बैठे हैं]

उपे०—भक्तो, मुझे जान पड़ता है, आहार करना एक बहुत बड़ा आध्यामिक कार्य है। और, मक्खन तो—स्वयं श्रीकृष्ण—आहा—वही देवकीनन्दन—

भक्तगण—आहा!

उपे०—पीताम्बरधर, मयूरपुच्छभूषण, वंशीधर गोपाल—

भक्त०—(गद्गदस्वरमें) आहा!

उपे०—वही मक्खनचोर भगवान् स्वयं यह उज्ज्वल कोमल—आहा!—मक्खन खाते थे। इसी लिए—(मक्खन खाता है)

भक्त०—आहा!

उपे०—यह जो अंडेके आकारका लाल सुन्दर पदार्थ रसमें तैर रहा है, सो—आहा—जैसे कारण-जलमें सृष्टि उतरा रही है! इसका नाम रसगुल्ला है। आर्य ऋषियोंने इसका आकार देखकर ही यह सिद्धान्त स्थिर किया था कि पृथ्वी गोलाकार है। इसीसे यह आत्मा परमात्माकी ओर चला जाय।

(रसगुल्ला खाता है)

भक्त०—कैसी आध्यात्मिक व्याख्या है! कैसा आध्यात्मिक वर्णन है!

उपे०—यह पीनेकी चीज—जिसे देहाती भाषामें शर्बत कहते हैं—कैसे अपूर्व रहस्यसे भरा हुआ है! 'सर्वभूतेषु श्रीकृष्णः' आहा—सर्वभूत और शर्बत एक ही पदार्थ है। यह कैसा आध्यात्मिक व्यापार है! बस, अब यह उसी भूमा परमेश्वरमें जाकर लीन हो जाय! (शर्बत पीता है)

भक्त०—लीन हो जाय!

उपे०—उसके उपरान्त, यह जो धुआँ उगलनेवाला विचित्र यंत्र देखते हो, इसका नाम गुड़गुड़ी है। इसमें विष्णुका तेज है। हे हरि! हे गोविन्द! हे नारायण! हे मधुसूदन! (हुक्का पीता है।)

भक्त०—हरि भजो, हरि भजो।

[नौकरका प्रवेश]

नौकर—बाबूजी, यज्ञेश्वर बाबू आये हैं।

उपे०—यज्ञेश्वर बाबू! अच्छा भाइयो, तो अब तुम घरको जाओ।

मैं जरा मनको श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंमें लगाऊँगा। आहा! वे ही गोपीमनोरञ्जन, वे ही जीवकी परमगति, वे ही श्रीहरि उद्धार करेंगे और उन्हींके चरणोंका ध्यान करूँगा। आहा!

(भक्तगण 'आहा! ओहो!' आदि भक्तिभावसूचक शब्द करते हुए जाते हैं।)

उपे०—ओह, जैसे दम घुट रहा था, जान बची। अब देखूँ, यज्ञेश्वर क्यों आया है।

[यज्ञेश्वरका प्रवेश]

यज्ञे०—लो, उपेन्द्र बाबू तो यहाँ विराजमान हैं। उपेन्द्र बाबू, तुमसे मुझे एक बात कहनी है।

उपे०—तुमसे मुझे भी कुछ कहना है यज्ञेश्वर!

यज्ञे०—तुमने विश्वासघातका काम किया है।

उपे०—मैंने?

यज्ञे०—हाँ तुमने। तुमने अपने पिताका ऋण छोटे भाईके माथे डाल दिया। कहा कि वह घर बेचकर अदा कर देगा। उसका घर भी बिक गया, मगर ऋणका एक पैसा भी नहीं चुका।

उपे०—पर, इसमें मेरा दोष नहीं है।

यज्ञे०—तुम्हारा दोष नहीं है? मैं तुम्हारे कान पकड़कर वह रकम वसूल कर लूँगा।

उपे०—कर लो। जानते हो कि मैं वकील हूँ?

यज्ञे०—और मैं महाजन हूँ। दोनों ही जने गरीबोंका खून चूसते हैं। यदि अन्तर है तो यही कि मैं वैष्णव नहीं हूँ! पर मैं तुमसे ये रुपये जरूर वसूल करूँगा।

उपे०—कर लेना, तुम खुद 'भरपाये' का कागज लिख कर मुझे दे चुके हो; कर लेना वसूल।

यज्ञे०—तो फिर देखोगे?

उपे०—क्या?

यज्ञे०—यह याद है कि मैं असल वसीयतनामेका गवाह हूँ?

उपे०—वह वसीयतनामा अब है कहाँ?

यज्ञे०—अभी है। उसी शीशमकी आलमारीमें।

उपे०—वाह!

यज्ञे०—वाह नहीं। तुम समझते हो, वह वसीयतनामा अगर होता तो अबतक देवेन्द्रके हाथ लग जाता। मगर यह बात नहीं है। उस आलमारीके भीतर एक चोर-घर है। इस बातको केवल मैं ही जानता हूँ और कोई नहीं जानता। वह आलमारी अभीतक देवेन्द्रके पास है। मैं जाकर अभी देवेन्द्रसे कहता हूँ। रुपये वसूल होनेका यही सहज उपाय मेरे हाथमें है। उस वसीयत-नामेके अनुसार बारह आने जायदाद देवेन्द्रकी है और चार आने तुम्हारी।

उपे०—यह क्या!

यज्ञे०—बोलो, रुपये दोगे कि नहीं?

उपे०—पर तुम जाली वसीयतनामेके भी तो गवाह हो।

यज्ञे०—मैं अस्वीकार कर दूँगा। तुमने जालसाजी करके मेरे दस्तखत बना लिये हैं।

उपे०—पर इसपर कौन विश्वास करेगा?

यज्ञे०—जो बापके जाली दस्तखत बना सकता है, वह गवाहके जाली दस्तखत नहीं बना सकता? बोलो, रुपये दोगे या नहीं?

उपे०—यज्ञेश्वर, तुम यह काम नहीं कर सकते। तुम मेरे मित्र हो।

यज्ञे०—किसी आदमीका सर्वनाश करनेके लिए कुचक्र या षड्यन्त्र रचनेका नाम मित्रता नहीं है। दो साधु मित्र होते हैं, मगर दो हरामजादे मित्र नहीं हो सकते। उन दोनोंको दस वर्ष तक एक पिंजड़ेमें डाल रखनेसे भी वे मित्र नहीं हो सकते। पिंजड़ेसे बाहर निकलते ही वे वैसे ही हरामजादे हो जायँगे।

उपे०—यज्ञेश्वर! (हाथ पकड़ता है)

यज्ञे०—औरतोंकी तरह रोना रहने दो। (हाथ छुड़ाकर) रुपये दोगे कि नहीं?

उपे०—सुनते ही नहीं हो।

यज्ञे०—दोगे कि नहीं? तुम तो वकील हो, एक जवाब दो—हाँ या नहीं।

उपे०—एक बात सुन लो।

यज्ञे०—मैं जो कहता हूँ, वही करता हूँ। बोलो दोगे? यही आखरी सवाल है।

उपे०—दूँगा।

यज्ञे०—अभी लाओ।

उपे०—अभी?

यज्ञे०—हाँ, इसी दम। मुझे तुम्हारा विश्वास नहीं है।

उपे०—अभी मेरे पास रुपये नही हैं।

यज्ञे०—अच्छी बात है। (जाना चाहता है)

उपे०—ठहरो, देता हूँ।

यज्ञे०—दो।

उपे०—देखो यज्ञेश्वर, आपसमें फैसला कर लो।

यज्ञे०—फैसला ?

उपे०—हाँ, फैसला।

यज्ञे०—कैसा फैसला ?

उपे०—मान लो अगर—

यज्ञे०—(सहसा) हाँ फैसला कर लो। अगर उसके लिए राजी हो, तो मैं सूदसमेत असल छोड़ देनेको राजी हूँ। सुनो—

उपे०—काहेके लिए ?

यज्ञे०—ना, मैं जबानसे वह बात नहीं कह सकूँगा। उस प्रस्तावको सुनकर धरती काँप उठेगी और अमावसकी काली रातका यह अन्धकार जम जायगा। धर्म अगर है तो वह सूखकर सिकुड़ जायगा, मरकर सड़कर दुर्गन्ध देने लगेगा।

उपे०—सुनूँ तो, वह क्या प्रस्ताव है ?

यज्ञे०—समझे नहीं ? तुम भी पातकी हो, मैं भी पातकी हूँ। तो भी तुम्हारे आगे वह बात मेरी जबानपर नही आती। फिर भी नहीं समझे ?

उपे०—ना।

यज्ञे०—सुनो (कानमें कहता है) क्यों ! चौंक पड़े ?

उपे०—क्या ? अपनी सगी भतीजीको ? (यज्ञेश्वरका गला पकड़कर) पाजी ! शैतान !

यज्ञे०—सावधान उपेन्द्र !

उपे०—(सहसा) ना ना। छोड़े देता हूँ। याद नहीं रही, खयाल नहीं रहा। (छोड़ देता है)

उपे०—मंजूर। अरे वह कौन है ?

यज्ञे०—कोई भी नहीं है। यह क्या, काँप रहे हो ? आओ, बाहर चलें।

(प्रस्थान)

चौथा दृश्य

स्थान—देवेन्द्रके घरका अन्तःपुर। **समय**—संध्याकाल।

[कामिनी और विनोदिनी]

कामि०—क्या हुआ ?

विनो०—सदानन्द बाबूने कहा कि अभी गहने बेचनेकी जरूरत नहीं है। गहने गिरवी रखकर पाँच हजार रुपये ला दिये हैं।

कामि०—उन्होंने क्या कहा ? मेरा बच्चा बच तो जायगा ?

विनो०—वे उसके लिए भरसक कोशिश करेंगे; कुछ उठा नहीं रक्खेंगे।

कामि०—भगवान् उनका भला करें। देखो बेटी, तुम्हारे बाबू इन रुपयोंके बारेमें कुछ न जानने पावें; नहीं तो वे आफ़त मचा देंगे।

विनो०—डरो नहीं अम्मा, वे कुछ नहीं जान सकेंगे। (प्रस्थान)

कामि०—भगवान्, रक्षा करो। भगवान्—

[देवेन्द्रका प्रवेश]

देवे०—खानेको अब भी नहीं तैयार हुआ ?

कामि०—ए लो, मैं भूल ही गई थी।

देवे०—देखता हूँ, अब तुम सब मिलकर मुझे घरमें न रहने दोगे।

कामि०—मैं अभी किये देती हूँ।—क्यों बच्चेकी क्या खबर है ?

देवे०—(रूखे स्वरमें) जाओ, परेशान न करो।

(कामिनीका प्रस्थान)

देवे०—लड़का जेल गया, जाने दो। और क्या ? अब पिताका कर्ज चुकाकर, उसके बाद कोपीन बाँधकर, फकीर हो जाऊँगा। स्त्री और दो लड़कियाँ रह गईं, सो न होगा तो वे भी भीख माँगकर खा लेंगी। लड़का जेल गया, अच्छा ही हुआ। अब खानेको न देना पड़ेगा। बुरा क्या है !

[सुशीलाका प्रवेश]

देवे०—तुम यहाँ क्यों आई हो ? जाओ।

सुशी०—बाबूजी, सदानन्द बाबू आये हैं। आपसे मुलाकात करना चाहते हैं।

देवे०—आः, इस सदानन्दने तो परेशान कर डाला। कह दो, मुझे फ़ुरसत नहीं है, तबीयत ठीक नहीं है।—ना, अच्छा, बुला ही लाओ।

(सुशीलाका प्रस्थान)

देवे०—सबके मुँहसे यही एक बात सुन पड़ती है कि 'आहा, देवेन्द्रका लड़का जेल गया !' जैसे इस 'आहा' से मेरा कलेजा ठंडा हो जायगा।

[सदानन्दका प्रवेश]

देवे०—क्या खबर है सदानन्द ? आज मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।

सदा०—क्या हुआ भाई देवेन्द्र, डाक्टरको बुलाऊँ ?

देवे०—सारे चिकित्सा-शास्त्रमें इस रोगकी दवा नहीं है।

सदा०—सोच न करो देवेन्द्र, अपील करूँगा। महेन्द्र अभी छूट सकता है।

देवे०—ना, ना, अपील न करना। लड़का जेल गया तो अच्छा हुआ। अब उसे बैठे बैठे खानेको मैं नहीं दे सकता। और, एक बोझ तो कम हुआ ! इस स्त्रीको और दोनों लड़कियोंको भी तुम इसी तरह जेल भिजवा सकते हो ? यह कर सको, तो बहुत अच्छा हो।

सदा०—यह तुम क्या कह रहे हो भाई ?

देवे०—बैरिस्टर खड़ा करके तुमने इतने रुपये बेकार खर्च कर डाले। तुम्हारी भी बुद्धि खूब है ! सुना है, तुमने इस मुकद्दमेमें पाँच हजार रुपये खर्च कर डाले हैं, क्यों ?

सदा०—हाँ, इतनेहीके लगभग खर्च हुआ है।

देवे०—तुमने इतने रुपये कहाँसे पाये, यह पूछनेका मुझे खयाल ही नहीं रहा। मेरा दिमाग खराब हो गया था। अब ठीक है। बताओ, इतने रुपये कहाँसे खर्च किये ?

सदा०—तुम्हें यह पूछनेसे क्या मतलब ? हम लोगोंने किसी तरह रुपयोंकी तदबीर कर ली थी।

देवे०—तो तुमने अपने पाससे रुपये खर्च किये हैं ? याद रक्खो सदानन्द, अगर तुम मेरे लिए एक पैसा भी खर्च करोगे, या तुमने एक पैसा भी खर्च किया है, तो जीवनभर मैं तुमसे बात नहीं करूँगा। तुम मुझे अच्छी तरह पहचानते हो। मेरे पुरखोंमेंसे किसीने कभी किसीका दान नहीं लिया, मैं भी नहीं लूँगा।

सदा०—इतने घबराये क्यों जा रहे हो देवेन्द्र, मैं कसम खाकर कहता हूँ, मेरी एक कौड़ी भी खर्च नहीं हुई है।

देवे०—तो फिर ये रुपये कहाँसे आये ?

सदा०—तुम्हारी स्त्रीने भेज दिये थे।

देवे०—मेरी स्त्रीने ? उसने पाँच हजार रुपये कहाँसे पाये ?

सदा०—यह तो मैं नहीं जानता । मेरा लड़का मेरे पास ये रुपये लाया था। उसीने कहा कि तुम्हारी स्त्रीने मुकद्दमेके खर्चके लिए ये रुपये भेजे हैं।

देवे०—तुमने नहीं पूछा कि मेरी स्त्रीने ये रुपये कहाँसे पाये ?

सदा०—पूछा था । विनयने कहा, उन्होंने यह बतानेको मना कर दिया है।

देवे०—अच्छा, मैं उससे पूछ लूँगा । हाँ सदानन्द, एक बात और है । मैंने कर्ज़की डिगरीके रुपये इकट्ठे कर लिये हैं । तुम जाकर अदालतमें जमा कर आओगे ? जा सकोगे ?

सदा०—लाओ । आज ही दे आऊँ, मुझे बहुत फ़ुरसत है ।

देवे०—मैं ही जमा कर आता, मगर मेरी तबीयत सुस्त है । जान पड़ता है, बुखार चढ़ा हुआ है । लेकिन मैं जब पिताका ऋण चुकानेका प्रबन्ध कर चुका हूँ, तब अब उसे एक दिन भी बाकी रखना नहीं चाहता । अपनी आखिरी जायदाद बेच कर मैंने ये रुपये जमा किये हैं।

सदा०—यह क्या देवेन्द्र, घर बेच डाला ? किसके हाथ बेच डाला ?

देवे०—हाँ सदानन्द, घर बेच डाला ।

सदा०—यह क्या ? बेचनेके पहले एक दफा मुझसे कहा भी नहीं।

देवे०—तुमसे कहता तो तुम बेचने ही न देते ।

सदा०—सो तो होता ही । यह तुमने क्या किया देवेन्द्र, पुरखोंकी देहली बड़ी पवित्र चीज होती है !

देवे०—पुरखोंकी देहलीकी अपेक्षा पिताका ऋण मेरी दृष्टिमें अधिक पवित्र चीज है । (लोहेका सन्दूक खोलता है ।)

सदा०—देवेन्द्र, तुम्हारा हृदय अत्यन्त महत् है । भगवान् जानें, तुम्हारे ही सिरपर ये विपत्तिके बादल क्यों घिरे हुए हैं । लाओ ।

देवे०—ऐं ! नोटोंका बंडल कहाँ है ?

सदा०—क्या सन्दूकके भीतर नहीं है ?

देवे०—कहाँ है ! जो सोचा था, वही हुआ है !

सदा०—रुपये थे या नोट ?

देवे०—सब दस दस रुपयेके नोट थे।

सदा०—किसीको दिये तो नहीं ?

देवे०—यह चोरी है । निश्चय चोरी है ।

सदा०—लोहेका सन्दूक खोलकर कौन चुरा ले जायगा ?

देवे०—और कौन चुरा ले जायगा ? किसका काम है, सो मैं जानता हूँ।

सदा०—किसका काम है ?

देवे०—हूँ !

सदा०—चोरी नहीं की गई है। और कहीं रक्खे होंगे, याद करो। अब जाकर नहाओ-धोओ, फिर खयाल करके देखना। घबराओ नहीं। मैं तीसरे पहर आकर फिर खबर ले जाऊँगा। (प्रस्थान)

देवे०—समझ गया गृहिणी ! तुमने पाँच हजार रुपये कहाँसे पाये, सो मालूम हो गया। मैं तो पहलेहीसे देख रहा था कि उन पाँच हजार रुपयों-पर घर भरकी नजर है। तुमने लड़केको बचानेके लिए मेरे पाँच हजार रुपये चुराये हैं। चोरी की है, चोरी ! लो ! वह आ भी गई।

(कामिनीका प्रवेश)

कामि०—भोजन तैयार है। नहाओ।

देवे०—गृहिणी !

कामि०—क्या ! इस तरह मेरी और क्यों देख रहे हो ?

देवे०—अन्तको चोरी !

कामि०—कैसी चोरी ?

देवे०—तुम्हारी इतनी हिम्मत ! मेरे लोहेके संदूकसे चोरी !

कामि०--किसने चोरी की ?

देवे०—तुमने।

कामि०—मैंने ?

देवे०—मेरा पहलेसे ही यह खयाल था कि उन पाँच हजार रुपयोंपर घर-भरकी नजर है। जानती हो, ये पाँच हजार रुपये मेरे खूनसे सने और द्दत्पिण्डसे बने हैं। पिताका दान—साधारण दान—यह घर था। उसीको बेचकर मैंने ये रुपये इकट्ठे किये थे। वे ही चुरा ले गईं !

कामि०—यह क्या कह रहे हो ? मैं चोरी करूँगी ?

देवे०—गृहिणी, मेरे पाँचों हजार रुपये फेर दो।

कामि०—तुम क्या कह रहे हो ? तुम्हारा लोहेका सन्दूक खोल कर मैं तुम्हारे रुपये चुराऊँगी ?

देवे०—उसके ऊपर मुखका भाव ऐसा दिखा रही हो, जैसे एकदम

निर्दोष हो, कुछ जानती ही नहीं। ओः ! यह स्त्री-जाति कैसी कपटी और झूठी होती है ! ये स्त्रियाँ सब कुछ कर सकती हैं। मुझे यही आश्चर्य मालूम पड़ रहा है कि अब तक तुमने मुझे विष क्यों नहीं खिला दिया ! क्यों नहीं खिलाया ? मौका तो खूब मिला था ! लाओ, रुपये फेर दो।

कामिनी—भला मैं रुपये लेकर क्या करती ?

देवे०—क्या करतीं ? जानतीं नहीं हो कि क्या किया ? तुमने लड़केके मुकद्दमेके खर्चके लिए वे रुपये सदानन्दके पास भेज दिये हैं। नहीं जानती हो ? लाओ मेरे रुपये।

कामि०—कैसे गजबकी बात है ! मान लो, अगर मैंने यही किया हो तो क्या वह तुम्हारा लड़का नहीं है ?

देवे०—विश्वास क्या ? पर इस चर्चाको जाने दो। उसे बचानेके लिए तुमने मेरे वे रुपये खर्च कर डाले हैं, जिन्हें मैंने अपना सर्वस्व, पुरखोंका घर बेचकर, अपनेको बेचकर और परकाल बेचकर जमा किया था। कहता हूँ, लाओ रुपये।

कामि०--अच्छा तो सुनो। मैंने लड़केको बचानेके लिए जो रुपये सदानन्द बाबूके पास भेजे थे, वे रुपये अपनी माके दिये हुए गहने बेचकर पाये थे। उनमें एक पैसा भी तुम्हारा नहीं है। सच कहती हूँ। और, तुमने जो मुझे चोरी लगाई है उसे मैं भूल जाऊँगी; कारण तुमको यह होश नहीं है कि तुम क्या कह रहे हो।　　(रोती है)

देवे०—गृहिणी, आँसू बहाकर अब तुम मुझे नहीं बहला सकतीं। तुम्हारी जाति धूर्त होती है। तुम्हें जन्मसे ही रोने-धोनेका अभ्यास होता है। मैं नही मान सकता। लाओ रुपये, नहीं तो—

कामि०—नहीं तो ?

देवे०—नहीं तो और कुछ नहीं करूँगा, तुम्हें अपने घरसे निकाल दूँगा ! मैं अपने घरमें चोरको नहीं रख सकता।

कामि०—अच्छी बात है।

देवे०—अच्छा, तो अभी निकल जाओ !

कामि०—कहाँ जाऊँ ?

देवे०—जहाँ जी चाहे, जाओ !

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—जेलखाना। **समय**—सबेरा

(केदार और महेन्द्र)

केदार—तुम जेलमें कैसे आये ?

महे०—जाल करके।

केदार—अच्छा ! पर इतनी देर करके क्यों आये ?

महे०—क्यों, पहले आनेसे क्या कुछ सुभीता होता ?

केदार—बातचीत होती। मैं तो आज यहाँसे जा रहा हूँ।

महे०—ओ, शायद तुम्हारी मियाद पूरी हो गई है !

केदार—हाँ, मगर उससे क्या होता है, चाहूँ तो मियाद बढ़वा सकता हूँ। यज्ञेश्वरको मारा तो छः महीनेकी कैद हुई; अब चाहूँ तो जेलरको मारकर साल डेढ़ साल और रह सकता हूँ। मगर नहीं, एकदफा यहाँसे निकलकर जानेकी बड़ी जरूरत है। उसके बन्द फिर चला आऊँगा। कुछ डर नहीं है, घबराना नहीं।

महे०—तो फिर जाते ही क्यों हो !

केदार—एक खास जरूरत है। गदाधर—हरिपद—किशोरी; गदाधर—हरिपद—

महे०—यह क्या कह रहे हो ?

केदार—रोज सबेरे उठकर रटता हूँ। लोग जैसे रामका नाम लेते हैं, मैं वैसे ही इन नामोंको जपता हूँ।

महे०—क्यों ?

केदार—तुम क्या समझोगे ? गदाधर—हरिपद—किशोरी। तुम्हारे पिता अच्छे हैं ?

महे०—ना, उन्हें सिरका रोग हो गया।

केदार—हो गया ? होना ही चाहिए। Somnambulism (नींदमें उठकर चलने फिरनेकी आदत) से सिरका रोग सिर्फ एक सीढ़ी ऊपर है। मैं उसकी दवा जानता हूँ।

महे०—क्या दवा है ?

केदार—गदाधर—हरिपद—किशोरी।

महे०—जान पड़ता है, तुम्हें भी सिरके रोगने पकड़ लिया है।

केदार—पकड़ लिया है ? गदाधर—हरिपद—ऐं—पकड़ लिया है—किशोरी, किशोरी, किशोरी। तुम बैठो, मैं अभी आता हूँ। कोई चिन्ता नहीं है भैया ! यह शरीर जो सहाओ वही सह लेता है। जब पुत्र-शोक भी सह लिया जाता है तब जेलखाना तो उसके देखते एक मामूली बात है। यहाँ कुछ लज्जा मत करो, इसे अपना घर ही समझो भैया !

महे० - विचित्र आदमी है !

केदार—और भैया, यज्ञेश्वरके साथ सुशीलाका ब्याह तो नहीं हुआ ?

महे०—नहीं।

केदार—अब जीमें जी आया। मुझे यही एक बड़ी चिन्ता थी। सुशीलाके ब्याहके लिए अब कुछ चिन्ता नहीं है। अब राजपुत्रके साथ उसका ब्याह करूँगा।—गदाधर—हरिपद—किशोरी। कोई चिन्ता नहीं है, राजपुत्रके साथ करूँगा।

महे०—कौनसे राजपुत्रके साथ ?

केदार—सो अभी नहीं कहूँगा, गदाधर—हरिपद—किशोरी। भैया, कुछ चिन्ता न करो, यहाँ तुम्हारा शरीर अच्छा रहेगा। नित्य नियमित आहार करो, नियमित परिश्रम करो, गहरी नींद सोओ। दोनों वक्त आकर डाक्टर तुमको देख जायगा। मेरे ससुरने भी कभी मेरा ऐसा खयाल नहीं किया जैसा खयाल इस जेलखानेमें रक्खा जाता है। अगर पृथ्वीपर कहीं स्वर्ग है, तो यह जेलखाना ही है।

महे०—सो कैसे केदार बाबू ?

केदार—केदार काका कहते तुम्हारे गलेमें क्या शूलका दर्द होने लगा है ? मगर यह मैंने गलत कहा। कारण, शूलका दर्द पेटमें उठा करता है। खैर वह चाहे जो हो, अबसे अगर मुझे तुम केदार बाबू कहोगे, तो थप्पड़ मार बैठूँगा। काका कहा करो।

महे०—अच्छा वही सही। लेकिन काका, तुमने जेलखानेको स्वर्ग कैसे कहा ?

केदार—यह स्वर्ग नहीं तो फिर स्वर्ग कैसा होता है ? मैं यह जानना चाहता हूँ बेटा, कि फिर स्वर्ग कैसा होता है ? ठीक समयपर भोजन मिलता है, जो घरमें कभी नसीब नहीं हुआ। दोनों वक्त डाक्टर आता है। मुझे याद है, एक बार घरपर मुझे बड़े जोरसे बुखार आया था, वह तीन दिन

तक भयंकर रूपसे चढ़ा रहा; हालत खराब होने लगी, तब कहीं चौथे दिन डाक्टर आया। भाग्यसे नाड़ीका पता था, इसीसे जी उठा। नहीं तो तुम्हें आज काका कहकर न पुकारना पड़ता।

महे०—और घानी घुमाना ?

केदार—उससे तन्दुरुस्ती ठीक रहती है। मैंने देखा है, बहुत लोग सबेरे उठकर टहलने या चक्कर लगाने जाते हैं। किस लिए जाते हैं ? इसी लिए न कि तन्दुरुस्ती अच्छी रहेगी ? उसकी अपेक्षा अगर वे घड़ी-भर घानीके चारों ओर घूमें तो शरीर भी अच्छा रहे और थोड़ा-सा तेल भी निकल आवे। कोई चिन्ता नहीं है भैया, जेलखानेसे निकल कर देखोगे, तुम खूब मोटे ताजे गोल-मटोल हो गये हो !

महे०—यह आप क्या कह रहे हैं केदार बाबू !

केदार—चुप ! काका कहो—

महे०—हाँ हाँ, काका साहब—

केदार—मैं बहुत ठीक कह रहा हूँ। तुम खुद देख लेना। अक्षर अक्षर मिला लेना। अँगरेजोंका यह जेलखाना स्वर्ग ही है।

[जेलरका प्रवेश]

जेलर—केदार किसका नाम है ? बाहर निकलो।

केदार—तो फिर मैं जाता हूँ भइया, कुछ चिन्ता मत करना।—गदाधर—हरिपद—किशोरी।

(केदार और जेलरका प्रस्थान)

छट्ठा दृश्य

स्थान—बड़ी सड़क। **समय**—प्रातःकाल।

[कामिनीका प्रवेश]

कामि०—पूछती पूछती इतनी दूरतक तो आ गई। सुना है, इधर ही जेल है, लेकिन जेलके भीतर वे लोग मुझे जाने ही क्यों देंगे ? जीके दुःखके मारे घरसे तो निकल आई पर अब क्या करूँ ? देखूँ, जगदीश्वर क्या करते हैं।

[दूसरी ओरसे केदारका प्रवेश]

केदार—यह क्या बहूजी, इधर तुम अकेली कहाँ जा रही हो ?

कामि०—अपने बच्चेको देखने जाती हूँ। इधर ही जेलखाना है न? मेरा बच्चा वहीं है, उसे देखने जा रही हूँ।

केदार—तुम स्त्रीकी जाति अकेली वहाँ कैसे जाओगी? और वहाँ वे लोग जाने ही क्यों देंगे? उससे मैं मिल चुका हूँ, अच्छी तरहसे है।

कामि०—(आग्रहके साथ) भेंट हुई थी? तो मेरा बच्चा अच्छी तरह है?

केदार—हाँ, खूब अच्छी तरह है। अब चलो बहूजी, तुमको घर पहुँचा आऊँ।

कामि०—मैं अब घर नहीं जाऊँगी।

केदार—क्यों? क्यों, चुप क्यों रह गई? 'अब घर न जाऊँगी,' इसके क्या माने?

कामिनी—ना, मैं न जाऊँगी।

केदार—तो फिर कहाँ जाओगी?

कामि०—जिधर दिखाई पड़ेगा।

केदार—दिखाई तो सैकड़ों तरफ पड़ता है। सब तरफ नहीं जा सकोगी। बोलो, कहाँ जाओगी?

कामि०—चूल्हेमें।

केदार—ऊँहूँ! वह जगह सुभीतेकी नहीं है। उसकी अपेक्षा घर बहुत अच्छा है।

कामि०—मैं आत्म-हत्या करूँगी। उसके पहले बच्चेको एक बार देखने आई हूँ।

केदार—यह और कुछ नहीं, मानसिक विकार है। इसकी दवा मैं जानता हूँ—गदाधर—हरिपद—किशोरी।

कामि०—यह क्या कह रहे हो?

केदार—सो अभी नहीं बतलाऊँगा। घर चलो, मैं अभी जेलसे छूटकर आ रहा हूँ।

कामि०—मैं नहीं जाऊँगी। आप जाइए।

केदार—'आप जाइए' के क्या माने? ऐसा नहीं हो सकता।

कामि०—मैं नहीं जाऊँगी।

केदार—क्यों नहीं जाओगी? मुझे नहीं बताओगी? मैं तो तुम्हारा देवर हूँ। स्वामीके घर क्यों नहीं जाओगी?

कामि०—उन्होंने मुझे घरसे निकाल दिया है। (रो देती है।)

केदार—निकाल दिया है! किसने? भइयाने? तो बहूजी, सपना देखा है;—अर्थात् कुछ झगड़ा हुआ है। सो पति-पत्नीके बीच कभी कभी खटपट हो ही जाती है। खटपट होना अच्छा ही है; नहीं तो गिरिस्ती बहुत ही फीकी नूतनतारहित जान पड़ती है। घर चलो, मेरी प्यारी भावज, वह तो तुम्हारे स्वामीका अर्थात् तुम्हारा ही घर है।

कामि०—मैं वहाँ नहीं जाऊँगी।

केदार—तो फिर कहाँ जाओगी, ठीक करके बताओ न?

कामि०—बापके घर जाऊँगी।

केदार—(सोचकर) अच्छा जाओ। मेरी स्त्री भी इसी तरह बीच बीचमें। सो अच्छी बात है; गुस्सा कम हो जायगा तब यहीं लौट आओगी। ये स्त्रियाँ बड़ी ही विचित्र होती हैं। एकदम आग हो जाती हैं और थोड़ी ही देरमें एकदम बर्फ बन जाती हैं। अच्छा, तुम्हें पहुँचाने कौन जा रहा है?

कामि०—कोई नहीं।

केदार—अच्छा, तो चलो, मैं ही तुमको वहाँ पहुँचा आऊँ। जब जी चाहे, मेरे घर चली आना। मेरे घरको अपना ही घर समझना।

(दोनोंका प्रस्थान)

सातवाँ दृश्य

स्थान—उपेन्द्रका अन्तःपुर। **समय**—संध्याकाल।

[उपेन्द्र और विनोदिनी]

विनो०—चाचाजी, मुझे घर जाने दो। पालकी और कहार बुला दो। मैं घर जाऊँगी।

उपे०—घबरा क्यों रही हो विनोदिनी, तुम्हें कोई डर नहीं है।

विनो०—यह जो आप कह रहे हैं कि "कोई डर नहीं है," इसीसे अधिक डर मालूम होता है। आपका स्वर भर्राया हुआ है, आपकी दृष्टि संकुचित है, आपके रँग-ढँगमें चंचलता है, आपके मुँहपर स्याही फिरी हुई है। पहले तो ये बातें आपमें नहीं देख पड़ती थीं!

उपे०—(भर्राई हुई आवाजसे) मैं कहता हूँ, तुम्हें कोई डर नहीं है बेटी!

विनो०—यह क्या बात है! 'बेटी' कहनेमें आपकी जबान क्यों लटपटाती-सी है! पालकी और कहार बुला दो। बाबूजी मारें, पीटें, निकाल दें, चाहे जो करें, फिर भी बापका घर बापहीका घर है। पालकी और कहार बुला दो, नहीं तो मैं पैदल ही चली जाऊँगी।

उपे०—तुम खड़ी रहो, मैं पालकी-कहार बुलाये देता हूँ।

विनो०—ठहरो, मैं भी आपके साथ चलूँगी।

उपे०—क्यों?

विनो०—नहीं तो यहाँ किसके पास रहूँगी? आप चाहे जैसे हों, मेरे चाचा तो हैं? चाहे जिस तरहके हों, अपने आदमी तो हैं?

उपे०—केशव! मधुसूदन!

विनो०—ना ना, आप भगवानका नाम न लें। आप जब भगवानका नाम लेते हैं, तभी मैं समझती हूँ कि मन ही मन कोई शैतानी काम सोच रहे हैं। यह क्या, आप काँप रहे हैं?

उपे०—पालकी-कहार बुलाने आदमी भेजता हूँ, ठहरो।

(जाना चाहता है।)

विनो०—मैं भी चलूँगी।

उपे०—हटो। (बाहर जाकर दरवाजा बन्द कर देता है।)

विनो०—यह क्या! बाहरसे दरवाजा क्यों बंद कर दिया? चाचाजी! दरवाजा खोलिए चाचाजी!

[दरवाजा खोलकर यज्ञेश्वरका प्रवेश।]

विनो०—(चौंककर, कुछ पीछे हटकर) यह कौन?

यज्ञे०—(उसी तरह पीछे हटकर) यह कौन?

विनो०—आप कौन हैं?

यज्ञे०—यज्ञेश्वर। (स्वगत) यह तो उससे भी बढ़कर सुन्दरी है!

विनो०—आप यहाँ क्यों आये हैं?

यज्ञे०—अभी मालूम हो जायगा। तुम्हारी बहन कहाँ है? मैंने सोचा था, यहाँ वही होगी।

विनो०—सोचा था, मेरी बहन यहाँ होगी?

यज्ञे०—(अनसुनी करके) सो यही क्या बुरी है? तुम तो उससे भी बढ़कर सुन्दरी हो, और फिर विधवा हो। आओ।

विनो०—कहाँ ?

यज्ञे०—काँपती क्यों हो ? आओ, बाहर गाड़ी तैयार है। चलो, मैं तुम्हें बड़े सुखसे रक्खूँगा। अरे मुँह लटकाये क्यों खड़ी हो ? आओ। (हाथ पकड़ता है।)

विनो०—तुम्हारी इतनी मजाल ! छोड़ दो हाथ। (हाथ छुड़ाकर दरवाजेके पास जाकर धक्का देती है) चाचाजी ! चाचाजी !

यज्ञे०—तुम पुकार किसे रही हो ? खड्गसे बचनेके लिए छुरेके आगे गर्दन बढ़ाये देती हो ? जंगलसे भाग कर छिपे हुए गढ़ेमें पैर बढ़ाये देती हो ? तुम्हारे चाचा इस काममें शरीक हैं, वे सब जानते हैं।

विनो०—वे जानते हैं ?

यज्ञे०—नहीं तो किस साहससे उनके घरमें उन्हींकी भतीजीके बदनमें मैं हाथ लगाता ! वह सिर्फ जानते ही नहीं, बल्कि मेरे मददगार भी हैं। उन्होंने ही यह शराबकी प्याली मेरे ओठोंसे लगा दी है।

विनो०—झूठ बात है।

यज्ञे०—झूठ और असम्भव समझती हो ? तुम नहीं जानतीं कि मर्द कहाँ तक नीच और फरेबी हो सकते हैं। हम लोग रुपयेके लिए हत्या कर सकते हैं और काम-भोगके लिए ' फटी लँगोटी फत्तेखाँ ' बन सकते हैं। एकटक मेरी ओर ताक क्यों रही हो ? क्या देख रही हो ?

विनो०—नरक।

यज्ञे०—आओ।

विनो०—अब विरोध नहीं करूँगी, चलिए।

यज्ञे०—यही तो समझदारीकी बात है। आओ।

(हाथ पकड़ता है और विनोदिनीको अपनी ओर खींचता है कि वह बेहोश होकर गिर पड़ती है।)

यज्ञे०—अरे यह क्या हुआ ? ना, समझ गया। बेचारीकी धारणामें ही यह बात नहीं आई कि बापका भाई—पिताके बराबर—वह ऐसा करेगा ! मगर रुपयेका खेल देखो बाबा, दुनियाको उलट दे सकता है, खून-मांसका सम्बन्ध तो कोई चीज ही नहीं है। और रुपयेसे भी बढ़कर भयंकर यह कामिनी है। (विनोदिनीको देखते देखते) स्त्री सुन्दरी और मनोहर है। सब शत्रुओंसे बढ़कर प्रबल यह काम है। यह शत्रु आँधीसे भी बढ़कर प्रबल

है, आगसे भी बढ़कर ज्वालामय है, बिजलीसे भी बढ़कर तेज है, मरीसे भी बढ़कर ममताहीन है। यह कामशत्रु प्रतिहिंसासे बढ़कर अन्धा, लोभसे बढ़कर अतृप्त, क्रोधसे बढ़कर रक्तवर्ण और मदसे भी बढ़कर उच्छृंखल है। जिसके स्पर्शसे 'ट्राय' का ध्वंस हुआ, जिसके कारण सुंद-उपसुंदकी अपमृत्यु हुई, जिसके कारण विश्वामित्रका पतन हुआ, जिसके कारण अहल्याका सर्वनाश हुआ, जिसके कटाक्षसे एण्टोनीकी अधोगति हुई, जिसके स्पर्शसे लंकेशका वंशलोप हो गया, यह वही प्रबल शत्रु कामदेव है। कैसा आश्चर्य है! मनुष्य इस बातको जान बूझकर भी बिलकुल नहीं सोचता! औरत बेशक खूबसूरत है! इस कोमल मांस-पिण्डके लिए मैं पाँच हजार रुपये छोड़े देता हूँ, फिर भी इस छोड़नेमें कोई नुकसान नहीं जान पड़ता। भरा हुआ पेट, बेशर्मी और जवान औरत, ये तीनों बातें अगर एक साथ मिल जाती हैं, तो फिर हृदयके नरकमेंसे शैतानोंका दल निकल पड़ता है।—अब इसे होश आ रहा है, चारों ओर देख रही है। कैसी सुन्दरी है! वाह वाह!

विनो०—(उठकर) मैं कहाँ हूँ? आप कौन हैं? ओ वही तो हैं! यह तो सपना नहीं है!—कैसा भयंकर है!

यज्ञे०—सुन्दरी!

विनो०—नरक है नरक!

यज्ञे०—सुन्दरी! (हाथ पकड़ता है।)

विनो०—बचाओ, कोई मुझे बचाओ। (दरवाजेपर धक्का मारती है।)

यज्ञे०—किसे पुकारती हो? घरमें कोई नहीं है। केवल तुम हो और मैं हूँ।

विनो०—कैसा भयानक है!

यज्ञे०—आओ सुन्दरी! तुमपर मैं कोई जोर-जुल्म नहीं करूँगा, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।

विनो०—हाँ, जैसे बाघ बकरीको प्यार करता है और साँप मेढ़कको। मुझे प्यार न कीजिए, मुझसे घृणा कीजिए, घृणा कीजिए—दोहाई है आपकी।

यज्ञे०—बाहर गाड़ी खड़ी है। चलो।

विनो०—मुझे छोड़ दीजिए।

यज्ञे०—तुम्हें सुखमें रक्खूँगा।

विनो०—छोड़ दीजिए। (पैर पकड़ती है।)

यज्ञे०—यह कैसे हो सकता है सुन्दरी ? मैं परदेस जा रहा हूँ, तुम्हें साथ ले चलूँगा।

विनो०—नहीं छोड़िएगा ?

यज्ञे०—ना, मेरी यह प्रतिज्ञा है।

विनो०—कैसी महती प्रतिज्ञा है ! तो मेरी भी प्रतिज्ञा सुनिए। मैं जान दे दूँगी, मगर आन न दूँगी।

यज्ञे०—यह क्या ! तुमने तो फिर बेसुरी तान छेड़ दी ! आओ।

विनो०—अरे कोई है ? मुझे बचाओ।

यज्ञे०—कोई नहीं है। देखो, अब अधिक नखरे मत करो, आओ।

(गलेमें हाथ डाल देता है।)

विनो०—हट जाओ (धक्का देकर दूर गिरा देती है।)

यज्ञे०—ओह ! तो फिर बिलकुल ही—(छुरा निकाल कर) देखती हो ?

विनो०—मारो, मार डालो।

यज्ञे०—ना, यह नहीं करूँगा। यह करने थोड़े आया हूँ। (छुरा रख देता है) मेरे हाथ-पैरोंका बल ही काफी है। चलो। (मजबूत मुट्ठीसे हाथ पकड़ लेता है।)

विनो०—अरे कोई नहीं आया ? मैंने सुना है और पढ़ा भी है कि विपत्तिके समय अगर कोई बचाने नहीं आता, तो देवता आकर स्त्रीके धर्मकी रक्षा करते हैं। मुझे देवताओंने भी छोड़ दिया, मेरा कोई नहीं है।

यज्ञे०—क्यों, मैं तो हूँ ?

विनो०—(सहसा) हाँ तुम हो। तो अब डर नहीं है, तुम हो। मैं तुम्हारी पशु-प्रवृत्तिके विरुद्ध, तुम्हारी ही महत्-प्रवृत्तिका आश्रय लेती हूँ। मेरी जान भले ले लो, मगर आन न लो। मैं तुम्हारे अत्याचारके विपक्षमें, तुम्हारे ही धर्म और तुम्हारे ही मनुष्यत्वके निकट आश्रयकी भीख माँगती हैं। जान ले लो, पर आन रहने दो। अपने विरुद्ध तुम्ही मेरी सहायता करो !

यज्ञे०—मैं ?

विनो०—हाँ, तुम। आज तुम्हारे ही महत्त्वके दुर्गमें मैंने आश्रय लिया। देखूँ, कैसे तुम मुझे वहाँसे हटाते हो। पराजित, प्रताडित, खेदा हुआ आदमी अपने परम शत्रुके किलेमें जाकर आश्रय लेता है; पर जब वह दुर्ग भी टूट कर गिर पड़ता है, तब घोर जंगलमें जाकर छिपता है; पर जब वह वन भी

उसकी रक्षा नहीं कर सकता और विजयी पुरुष जब उस अपने शत्रुको माताकी गोदसे खींच लाकर उसकी छातीमें प्रतिहिंसाकी छुरी भोंक देना चाहता है तब, उस निर्बल मनुष्यका अन्तिम आश्रय—अन्तिम दुर्ग—विजयीका मनुष्यत्व ही होता है। घुटने टेक कर, आँखोंमें आँसू भरकर, ऊपर सिर उठाकर, हाथ जोड़कर जब वह बन्दी विजयीसे क्षमाकी भीख माँगता है, तब उसके सामने खड़े हुए विजयीके हाथकी मजबूत मुट्ठीसे वह छुरी आप ही आप गिर पड़ती है; उसकी लाल लाल आँखोंमें आँसू भर आते हैं, उसकी आंखोंकी जलती हुई नरककी आग बुझ जाती है; फिर उसकी क्या मजाल, जो वह कैदीका बाल भी बाँका कर सके। उसी दुर्गका (बैठकर हाथ जोड़कर) मैं भी आश्रय लेती हूँ। लोहेके दुर्गसे भी दृढ, तीर्थसे भी पवित्र, मनुष्य-लोकका स्वर्ग यह जो तुम्हारे मनुष्यत्वका दुर्ग है उसका, तुम्हारे मानव हृदयका मैं आश्रय लेती हूँ। अब तुम्हारी जो इच्छा हो, सो करो।

यज्ञे०—ना ना, तुम्हें कोई डर नहीं है बेटी। मैं चाहे जितना नीच होऊँ, मगर मनुष्य ही तो हूँ। तुम्हारे विचार इतने ऊँचे हैं? आँखोंके आगे धुँधला देख पड़ता है। बेटी, मुझे अपने चरणोंकी रज दो। क्षमा करो बेटी!

(पर्दा गिरता है।)

*

*

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान—सदानन्दका घर। **समय**—प्रातःकाल।

[सदानन्द और विनय]

सदा०—घरसे निकाल दिया?

विनय०—हाँ बाबूजी।

सदा०—अपनी स्त्रीको चोर कहकर! Somnambulism (नींदमें उठकर चलने-फिरनेकी आदत) से आगे insanity (पागलपन) और एक सीढ़ी! सुशीला भी चली गई?

विनय०—हाँ बाबूजी, उसकी माता उससे कहकर नहीं गई। सुशीलाको जब यह हाल मालूम हुआ कि उसके बापने उसकी माको घरसे निकाल दिया है, तब गुस्सेके मारे उसका मुँह लाल हो उठा। उसके बाद ही उसने अपने बापसे कहा, "मैं भी जाती हूँ बाबूजी!"

सदा०—देवेन्द्रने क्या कहा?

विनय०—कुछ बोले नहीं।

सदा०—यह सुशीला भी विचित्र लड़की है। अपने मनकी ही करती है। यह सब अँगरेजी-शिक्षाका फल है।

विनय०—पढ़ी लिखी होनेहीसे क्या स्त्री अपने मनकी हो जाती है?

सदा०—यही तो दीख रहा है।

विनय०—विलायतकी लेडियाँ तो—

सदा०—विलायतकी बात न कहो विनय, वे पाँच सौ बरससे शिक्षा पाती आ रही हैं और शिक्षा ही उनकी स्वाभाविक अवस्था हो गई है। सभी देखती हैं कि उनकी और सब बहनें शिक्षिता हैं। वहाँ किसीके गर्व करनेका कोई विशेष कारण नहीं है। इसीसे वे उच्च शिक्षा प्राप्त—पढ़ी-लिखी होनेपर भी नम्र होती हैं। पर यदि भारतमें किसीने बी० ए० ही पास कर लिया, तो वह धरतीपर पैर नहीं रखती।

विनय०—आप क्या सुशीलाकी निन्दा कर रहे हैं?

सदा०—थोड़ी-सी तो जरूर कर रहा हूँ। बेटा, बड़े बूढ़ोंपर भक्ति रखना, एक स्वतःसिद्ध गुण है। जो लड़की मा-बापकी बात नहीं सुनती, उसका भविष्य शुभ नहीं।

विनय०—हमारे देशमें भी क्या, ऐसीं, बापका कहा न माननेवालीं, लड़कियाँ नहीं पैदा हुई हैं?

सदा०—बतलाओ कौन हुई हैं?

विनय०—सतीशिरोमणि सावित्रीको ही ले लीजिए, जिनकी हिन्दू स्त्रियाँ आज भी घर घर पूजा करतीं और व्रत रखती हैं।

सदा०—सावित्रीको भी अपने उस हठका फल भोगना पड़ा था। साल भरके बाद ही वे विधवा हो गई थीं। मगर उनमें चरित्र-बल था, इसीसे वे उस विपत्तिके सिरपर पैर रखती चली गईं। आजकलकी लड़कियोंने सावित्रीका हठ या कहा न मानना तो ले लिया है, मगर वह चरित्र-बल नहीं पाया।

विनय०—आपके पास इसका कोई प्रमाण है?

सदा०—तुम सुशीलाके बारेमें क्या समझते हो?

विनय०—मैं समझता हूँ कि सुशीलामें वह चरित्र-बल है।

सदा०—(हँसकर) देखा जायगा। उसकी माँ कहाँ गई, कुछ जानते हो?

विनय०—कोई भी नहीं जानता कि कहाँ गई हैं।

सदा०—कुछ ठीक समझमें नहीं आता। अब देवेन्द्र मुझसे किसी बारेमें कोई सलाह भी नहीं लेते। मुझे डर लगता है, शायद मुझे देखकर वे खीझ उठें। तो भी एक दफा जाऊँगा।

दूसरा दृश्य

स्थान—रास्ता। **समय**—जाड़ोंका सबेरा।

[हरि, विनोद, शंकर, और नवीन गाते हैं]

दयासिन्धु गोविन्द कृष्ण भज, हिंदू हुए अहो पक्के।
दिन-दोपहर डकैती करते, प्रेमसुधारस पीकरके॥
मुर्गी खाते नहीं, न मिलती, मगर मुफ्तमें मिले अगर।
तुम तो जानो, हैं उदार हम, अरुचि न होगी यों उसपर॥

हिन्दू-धर्मशास्त्र हम सीखें, लालाके मुंशीके पास।
'मुनी-ऋषी' मिलकर मुंशीकी पदवीका है हुआ विकास॥
जीवनका सारांश समझते चोटी, माला, तिलक खड़ा।
देखो सभी जगहपर इनसे निकला करता काम बड़ा॥
कैसी सुंदर है यह चोटी, छोटी हो या हो मोटी।
आर्योंने यह खूब बनाई, इससे मिल जाती रोटी॥
बढ़ती आपोआप, पापहर, चतुर्वर्ग फल देती है।
आहा! कैसी कष्ट नष्ट है, पीछे झोंके लेती है॥
जो खाओ सब हजम एकदम, जहाँ हाथ भरकी खोली।
वाह वाह कैसी अद्भुत यह, बनी हाजमेकी गोली॥
निर्भय हो भिक्षाकी झोली रखकर कन्धेपर बंदा।
नाम धर्मका लेकर सबसे तहसीला करता चंदा॥
ऐसे बहुत गधे हैं जगमें, जो मुखसे सुनकर 'हरि'नाम।
थैली खोल, तुरंत रुपेया, गिन देते, फिर करें प्रणाम॥
फिर क्यों चिन्ता व्यर्थ करो यह, बोलो बोलो हरि बोलो।
भव-भावना नहीं रहनेकी, जल्दी इस मतमें हो लो॥
देखोजी जगदीशकृपासे सभी लोग खाते भरपेट।
हम ही फिर क्यों नहीं खायँगे, खाली रक्खेंगे क्यों टेंट?

हरि—अजी हमारे महाप्रभुका तो अब पता ही नहीं लगता।

विनोद—पता नहीं लगता! मामला क्या है?

शंकर—प्रभुकी अवस्था कुछ विषम जान पड़ती है।

नवीन—हे प्रभु, तुम भक्तोंको छोड़कर कहाँ चले गये?

हरि—आहा! नवीनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है!

नवीन—प्रभुने मेरी नौकरी लगा देनेके लिए कहा था जी! हाय प्रभू, तुम कहाँ गये!

हरि—आहा! बेचारा—

विनोद—एकदम हताश न होना नवीन!

नवीन—ना, अबकी प्रभूको कहीं एक दफा राहमें पा भर जाऊँ, तो बताऊँ।

शंकर—क्यों, क्या करोगे?

नवीन—दो लातें जमा दूँगा।

हरि—क्योंजी, यह क्यों ?

नवीन—इतनी खुशामद की, मगर सब बेकार गई !

विनोद—अजी घबराते क्यो हो ? प्रभु जरूर ही भक्तका मनोरथ पूरा करेंगे।

शंकर—हाँ, प्रभुकी लीला कौन समझ सकता है !

[हँसते हुए केदारका प्रवेश]

केदार—हाः, हाः, हाः।

विनोद—क्यों केदार बाबू, हँस क्यों रहे हो ?

केदार—चुप रहो ! मुझे हँस लेने दो। हाः, हाः, हाः।

शंकर—हुआ क्या केदार बाबू ?

केदार—अरे बाबा, रोको मत, यह रास्ता सरकारी है। हँस लेने दो। हिः, हिः, हिः।

नवीन—मगर इस तरह—

केदार—चुप रहो, छिपकलीकी दुम, गुबरीलेके बच्चे, खटमलके अंडे, भइया, क्यों शौकसे खालिस गालियाँ खा रहे हो ? मैंने निश्चय कर लिया है कि गालियाँ न दूँगा। लेकिन तुम लोगोंको देखकर, गाली दिये बिना रहा नहीं जाता।

नवीन—लेकिन केदार बाबू, हम लोगोंने अपना मत पलट दिया है।

केदार—पलट दिया क्या ! तुम्हारा और मत और फिर उसका पलट जाना ! जाओ, कहता हूँ कि दिक मत करो। हाः, हाः, हाः। अब जेल भेजता हूँ। बेटाजी जेलको चले ! अरे धिनता धिना, त्रेकेट तिना, ओरे धिनिता धिना, तिरिकिट तिना—(नाचता है।)

विनोद—यह क्या केदार बाबू, तुम तो नाचने लगे !

केदार—ओरे धिनता धिना, औ त्रेकेट तिना। बेटाजी अब जेलको चले। ओरे—

शंकर—कौन जेलको चला ?

केदार—और कौन ! वही साला ऊदबिलाव, पीपल परका भूत, नराधम, वही ! अरे ये गालियाँ फिर मुँहसे निकल गईं। केदार ! भले :मानस बनो। गालियाँ मत दो। भले आदमियोंकी भाषामें बातचीत करो। भाइयो, जेलको चले, श्रीयुक्त श्रीउपेन्द्रनाथ महाशय जेलको जा रहे हैं, समझे ?

नवीन—जेलको ?

केदार—हाँ, हाँ, जेलको जेलको, गारदमें, कारागारमें। उनके जानेसे शायद उस जगहका भी माहात्म्य बढ़ जाय। साला—हाः, हाः, हाः—

नवीन—क्या ! क्या ! क्या !

केदार—ना, अभी नहीं कहूँगा ! लेकिन पछतावा हो रहा है कि जेल जानेके पहले सालेको अपने हाथसे दो थप्पड़ नहीं मार सका। ओह ! बड़ा ही दुःख, अत्यन्त पछतावा हो रहा है। बड़ा ही कष्ट पा रहा हूँ। लेकिन इधर बड़ा मजा होगा। हाः, हाः, हाः—

नवीन—क्या मजा ?

केदार—ओः कहीं डालूँ ? लेकिन कहनेको तो मना कर दिया है !

विनोद—किसने ?

केदार—कही डालूँ, ना, नहीं कहूँगा। अच्छा सुनो। अबकी हाथमें प्रमाण आ गया है, पूरा सुबूत मिल गया है। ए लो, जरा और होता तो कही डाला था—और क्या।

शंकर—अगर कही डालेंगे तो क्या होगा ?

केदार—यह भी तो ठीक है, कही डालूँ तो क्या हर्ज है ? अबकी बेटाजी मजा पावेंगे। अन्तको साला यज्ञेश्वर—यह लो, जान पड़ता है, कही डाला ! ना, नहीं कहूँगा। कभी नहीं कहूँगा।

शंकर—क्यों ?

केदार—लेकिन बात छिपा रखना भी दूभर हो रहा है।

विनोद—कही डालिए।

केदार—बड़ा मजा आयगा ! हाः, हाः, हाः, यज्ञेश्वर ! ओह कैसा मजा है ! आलमारीके भीतर ! ओः ! होः, होः, होः, ओ बापरे ! कैसा मजा आयगा !

नवीन—सचमुच मजा आयगा, क्यों ?

केदार—कही डालूँ। अरे बाबारे ! बात जैसे पेटसे निकली ही पड़ती है, अब रोके नहीं रुकती। अरे बाबारे ! पेट फटा ! मरा ! कैसा मजा होगा !

सब—क्या—क्या—क्या होगा ?

केदार—अरे ! छिः, छिः, छि ! यह तो बड़ी मुश्किल हुई। जानते हो, बात क्या है ? गवाह-साखी सब मौजूद हैं, आलमारीके भीतर—हाः, हाः, हाः,—होः, होः, होः—ओ बाबारे ! अब रोके नहीं रुकती !

हरि—अजी, मैं पूछता हूँ, मामला क्या है ?

केदार—कही डालूँ ? बात यह है,—मगर मना जो कर दिया है जी !

शंकर—कर दिया होगा।

केदार—अबकी बेटाजी जेलकी सैर करने चले। ए लो, कही डाला था—और क्या !

हरि—कही डालिए न !

केदार—ना, भाग जाऊँ; नहीं तो निश्चय कह डालूँगा ! कह डालूँ ! अबकी बेटाजी—ओ बाबा ! (भाग खड़ा होता है।)

नवीन—पागल हो गया है क्या ?

हरि—नहीं जी,आदमी अच्छा है।

विनोद—जेल हो आया है न।

शंकर—पागल नहीं होगा ? भइया !

नवीन—लेकिन प्रभू—

हरि—दुत तेरे प्रभूकी ! अब नहीं अच्छा लगता, खिसक चलो।

विनोद—दो हाथ जमाये बिना ?

शंकर—सो तो अच्छा नहीं ! दो हाथ जमाये बिना खिसक चलना अच्छा नहीं मालूम पड़ता।

हरि—तो फिर वही किया जाय। चलो—चलो।

(सबका प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—खेवा घाट। **समय**—संध्याकाल।

[सुशीला और विनोदिनी]

विनो०—घर छोड़कर चली आई ! तुमने यह किया क्या ?

सुशी०—मेरे घर नहीं है, मैं निराश्रय हूँ।

विनो०—कहाँ जाओगी ?

सुशी०—सो कुछ नहीं जानती।

विनो०—लौट चलो।

सुशी०—कहाँ ?

विनो०—पिताके घर।

सुशी०—वहाँ मेरे लिए जगह नहीं है।

विनो०—क्यों? वे पिता हैं।

सुशी०—उन्होंने मेरी माको मार कर निकाल दिया है। उनके घरमें मैं उसी माकी बेटी होकर जाऊँगी? अथवा इसमें केवल उन्हींका क्या दोष है? बहुत पुराने वैदिक कालसे, मान्धाताके समयसे ही, पीढ़ी दर पीढ़ी पुरुषोंके हाथमें स्त्रीजातिका अपमान होता चला आ रहा है। पिताको ही क्यों दोष दूँ?

विनो०—यह क्या कह रही हो बहन? वे ही तो हमें खाने-पहननेको देते हैं।

सुशी०—यह मर्दोंका बड़ा भारी अनुग्रह है। दो रोटी खानेको देते हैं, इसीसे इतना अहंकार है! इस पुरुष जातिके द्वारपर दो मुट्ठी अन्नके लिए फकीर बन कर नारीका रहना! लज्जा भी नहीं आती!

विनो०—यह तुम्हारा क्या खयाल है बहन? राम राम, चलो, घर लौट चलो। तुम्हें ढूँढ़नेके लिए चारों ओर आदमी दौड़ रहे हैं। देखो, मैं तक तुम्हारे पीछे दौड़ी आई हूँ।

सुशी०—क्यों दौड़ी आई?

विनो०—तुम्हें समझाने। विनयसे खबर मिली कि तुम यहाँ हो, इसीसे विनयको साथ लेकर घरसे दौड़ी आई हूँ। मैं तुम्हारी बड़ी बहन हूँ, मेरी बात सुनो, घर लौट चलो। औरतकी जातिका इतना उद्धत होना नहीं सोहता। स्त्री कमजोर है, स्त्री अज्ञान है।

सुशी०—इसीसे मर्द उसे लातें मारेगा? इतनी मजाल! मैं दिखाती हूँ कि औरत भी मनुष्य है। दो वक्त दो मुट्ठी अन्नके लिए मोहताज होकर मर्दके दरवाजेपर पड़े रहनेकी कोई जरूरत नहीं है।

विनो०—तुम बचपनमें तो ऐसी नहीं थीं। पिताका दर्जा बहुत बड़ा है। शास्त्रमें लिखा है कि पिताके प्रसन्न होनेपर सब देवता प्रसन्न होते हैं। पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः।

सुशी०—तुमसे सौ दफे कह चुकी हूँ कि मैं शास्त्रके वचन नहीं मानती। मैं पितापर भक्ति रखती हूँ और यह प्रवृत्ति मेरी स्वाभाविक है। लेकिन

अगर वे भी कन्याको लात मारकर निकाल दें और कन्याकी माको मारें, तो कन्याके भी कुछ आत्म-सम्मान है, मनुष्यत्व है।

विनो०—ये सब साहबी ढंग हैं। पिता चाहे जो करें, वे पिता हैं, श्रद्धाके पात्र हैं।

सुशी०—मुझे उनपर अश्रद्धा नहीं है। उन्होंने मेरे लात मारी, मैंने चुपचाप सह लिया। लेकिन मैं माकी हत्याको नहीं क्षमा करूँगी। मैं उनके घरमें उनकी जानकी आफत होकर, अभिशाप बनकर, उनके गलेकी फाँसी बनकर, नहीं रहना चाहती।

विनो०—उनके घरमें रहनेकी जरूरत भी नहीं है। विनयकुमारके साथ ब्याह कर लो।

सुशी०—ना।

विनो०—क्यों?

सुशी०—मैं तुमसे बहस नहीं करना चाहती।

विनो०—ब्याह नहीं करोगी?

सुशी०—ना।

विनो०—क्या करोगी फिर?

सुशी०—ब्रह्मचर्य पालूँगी।

विनो०—पाल सकोगी?

सुशी०—क्यों न पाल सकूँगी? तुम पाल सकती हो और मुझसे नहीं पल सकेगा?

विनो०—लेकिन समाज—

सुशी०—समाज खूनी जानवर है, उसका विधान मैं नहीं मानती।

विनो०—मानो या न मानो, ब्याह करो या मत करो, पर घर लौट चलो।

सुशी०—ना। दीदी, तुम मुझे अच्छी तरह जानती हो। मैं प्रत्येक काम अपनी प्रवृत्ति, इच्छा और धारणाके अनुसार करती हूँ, किसीकी नहीं मानती।

विनो०—घरको नहीं लौटोगी?

सुशी०—ना। जिस घरमें माके लिए जगह नहीं है, वहाँ उसकी बेटीके लिए भी जगह नहीं है। तुम लौट जाओ, चार रोटियाँ खाओ और सुखसे जीवन धारण करो। मुझसे यह नहीं हो सकता।

विनो०—मैं और क्या कर सकती हूँ बहन, विनय समझाता तो शायद—

(सुशीला व्यंग्यकी हँसी हँसती है ।) पर विनय तुमसे एक बार मिलने तकको राजी नहीं है । वह मुझे यहाँ छोड़कर आप अकेला नदीके किनारे टहलने चला गया । तुमने अपने रूखे व्यवहारसे उसे भी इतना नाराज कर रक्खा है ।

सुशी०—सब अपराध मेरा ही तो है ! कहे जाओ ।

विनो०—तुम घर लौटकर नहीं जाओगी ?

सुशी०—ना ।

विनो० – तो कहाँ जाओगी ?

सुशी० – चूल्हेमें—

विनो०—सो मुझे भी बतानेमें क्या तुम्हें कुछ आपत्ति है ? (गद्गद स्वरमें) सुशीला, बहन, तुम उत्तेजित हो रही हो, नहीं तो मेरे साथ तुम ऐसा कठोर व्यवहार कभी न कर सकतीं । जिन्होंने, शायद आत्महत्या कर ली है, वे मेरी भी माता थीं;—लेकिन बहन, एक तो बाबूजीका दिमाग खराब हो गया है, दूसरे, सहनेके लिए ही स्त्रीका जन्म है । यह ईश्वरका विधान है, इसे सिर झुकाकर स्वीकार करो ।

सुशी०—स्वीकार कर लेती, लेकिन जिस ईश्वरने नारीको दुर्बल बनाया है, उसीने पुरुषके हृदयमें दुर्बलके लिए दया और सहानुभूति भी पैदा कर दी है । ईश्वरने मनुष्यको पशुओंकी तरह केवल हाथ-पैर ही नहीं दिये, उसे विवेक भी दिया है, मनुष्यत्व भी दिया है । नारी-जातिको दुर्बल पाकर जो जाति उसे केवल अपने विलासकी, सुपासकी, जरूरत रफा करनेकी चीज-भर समझती है, या उसे अपनी जातिके सिरकी एक आफत समझती है, उस जातिका सिर सदा नीचा रहेगा ।

विनो०—लेकिन—

सुशी०—जाओ दीदी, मेरे लिए कुछ चिन्ता मत करो । घर लौट आओ, मैं अपनी रक्षा आप कर सकती हूँ । यह देखो—(पिस्तौल दिखाती है; देखकर विनोदिनी काँप उठती है ।) जाओ बहन, बाबूजीसे कहना, मैं उनकी अबाध्य लड़की हूँ । मुझे वे क्षमा करें । लेकिन जब मुझे बाबाने अँगरेजीकी शिक्षा दी है, मिल्टन और शेलीके ग्रन्थ पढ़ाये हैं तब उससे और तरहके फलकी प्रत्याशा करना ही उनका भ्रम है ।

विनो०—तो फिर जाती हूँ; लेकिन मुझे यह बहुत ही खराब—बड़ा ही बेढंगा जान पड़ता है । क्या करूँ ? (चिन्तित भावसे प्रस्थान)

सुशी०—मेरा प्रण है कि घर लौट कर नही जाऊँगी। चाहे जो हो, पुरुषकी प्रभुता नहीं स्वीकार करूँगी। (प्रस्थान)

[डाकुओंका प्रवेश]

१ डाकू—अब रोजगार नहीं चलता।

२ डाकू—देखते हैं, इसे छोड़ देना पड़ेगा।

३ डाकू—पहले निर्भय होकर, खबर देकर, डकैती की जाती थी, कोई विघ्न या रुकावट नहीं होती थी; मगर अब—

४ डाकू—अब दाहने बायें, इधर उधर पुलिस लगी रहती है; रोजगार कसे चले ?

सरदार—इस रोजगारको छोड़ दो।

२ डाकू—सिरके ऊपर तलवार झूलती है और पीछे फाँसी तैयार रहती है, फँसने भरकी देर है। ऐसेमें कहीं डकैतीका रोजगार चल सकता है ?

३ डाकू—जाति गई, मगर पेट नहीं भरा।

१ डाकू—एक महीनेसे शहरमें घूम फिर रहे हैं, मगर कुछ नहीं कर पाते। रोजगार मिट्टी हो गया है।

सरदार—छोड़ दो फिर।

१ डाकू—छोड़ दें तो फिर करें क्या ?

सरदार—खेती।

३ डाकू—अन्तको वही खेती ! सरदार, तुम कहते क्या हो ?

२ डाकू—डकैतीका ऐसा अच्छा पेशा छोड़कर अब हम लोग गुंडोंका काम करते हैं—यही हद दर्जेका अपमान है; उसपर अब हल जोतें ?

सरदार—न जोतोगे तो पुलिस बहुत जल्द तुम्हें जोत डालेगी।

१ डाकू—(नेपथ्यकी ओर देखकर) वह एक औरत जा रही है, क्यों ?

२ डाकू—हाँ, किसी भले घरकी जान पड़ती है।

३ डाकू—मगर अकेली है।

४ डाकू—गहने भी पहने है।

सब—सरदार, लूट लें ?

सरदार—नहीं, मैं भागा जाता हूँ।

१ डाकू—भाग जाओगे ? औरतको देखकर भागोगे ?

सरदार—क्या जानें भाई, स्त्रीका मुँह देखकर मेरे हाथसे हथियार गिर पड़ता है। मैं भागता हूँ।

२ डाकू – तुम्हारे बिना कहीं काम चलता है ?

सरदार – खूब चलता है ।

३ डाकू—आओ सरदार, शिकार मिल गया है, चलो ।

सरदार—ना, औरतको लूटने मैं न जाऊँगा ।

४ डाकू—चलो, आओ । (सरदारका हाथ पकड़ता है ।)

सरदार—अच्छा चलो, मगर मैं आँखें बंद किये रहूँगा, देखूँगा नहीं । कानोंमें उँगली दे लूँगा, उसका शब्द नहीं सुनूँगा । औरतके बदनमें हाथ नहीं लगा सकूँगा; वह काम तुम लोगोंको करना पड़ेगा ।

४ डाकू—अच्छी बात है । तुम औरतोंसे भी गये गुजरे हो ।

सरदार—क्या जानें भाई, बीस-पचीस जवानोंका खून कर चुका हूँ, उनकी आँतें पाँतें ढेर कर दी हैं, पास खड़े खड़े उनका तड़पना देखा है, कान लगाकर उनका कराहना सुना है । लेकिन औरतोंके शरीरपर—भगवानने लोहेसे भी अधिक कड़ी चीजसे उनका कोमल शरीर बनाया है—हाथ नहीं लगा सकता । उसपर कटारी नहीं बैठती, लाठी हाथसे छूट पड़ती है ।

३ डाकू—अरे रुक क्यों गये ? चिल्लाकर रोने लगो !

सरदार—जी तो यही चाहता है कि रोऊँ, मगर रोया नहीं जाता । उसको मैंने लात मारी थी, इसीसे वह मर गई । लात खाकर न उसने कुछ कहा और न चिल्लाई । एकटक मेरी ओर ताकती रही, फिर आँखें बंद कर लीं और मर गई ।

२ डाकू—जबसे इनकी औरत मरी है तभीसे यह हाल हो गया है, पहले इनमें बड़ा तेज और बड़ी बेदर्दी थी ।

१ डाकू—चलो, चलो, शायद शिकार निकला जा रहा है, अब देर मत करो ।

(सबका प्रस्थान)

नेपथ्यमें सुशी० —बचाओ, बचाओ—

[शोरगुलके बाद सुशीलाको पकड़कर डाकुओंका प्रवेश]

सुशी०—तुम लोग कौन हो ?

सरदार—यह जानकर क्या करोगी मैया ?

सुशी०—तुम लोग डाकू हो ?

सरदार—तुमने ठीक समझा ।

सुशी०—यह लो, मेरे पास जो कुछ है, ले लो और मुझे छोड़ दो।

(हाथकी पहुँची खोलकर फेंक देती है।)

सरदार—ना, गहने मत उतारो। (पहुँची उठाकर देता है।) तुम्हारे पास रुपये हों तो दे दो।

सुशी०—ये लो। (नोट देती है।)

सरदार—(साथियोंसे) तो बस छोड़ दो।

१ डाकू—यह क्या! अभी तो और माल है?

सुशी०—अब नहीं है।

२ डाकू—वाह वाह मेरी सोनेकी चिड़िया! भला देखूँ—

(आँचल पकड़कर खींचता है।)

सरदार—यह क्या! छोड़ दो और जाने दो।

३ डाकू— देख लो, और कुछ है कि नहीं।

सुशी०—और कुछ भी नहीं है। ईश्वर साक्षी हैं।

(सरदार मुँह फेर कर खड़ा हो जाता है।)

सुशी०—मुझे छोड़ दो। बचाओ—

४ डाकू—ले छोड़ता हूँ, (पकड़ता है।)

सुशी०—बचाओ, बचाओ, (सरदारके पैरोंपर गिरती है।)

सरदार—(घूमकर) छोड़ दो। नहीं तो यह छुरा—(छुरा तानता है।)

डाकू लोग—खबरदार!

सुशी०—बचाओ, बचाओ—

[विनयकुमारका प्रवेश]

विनय—खबरदार!

सरदार—कौन? मर्द है? बस। तो फिर मैं तुम लोगोंकी ओर हूँ। (छुरा तानता है)

विनय—खबरदार! (तमंचेका निशाना साधता है।)

सरदार—तो लो! (विनयके कन्धेमें छुरा मारता है।)

(विनय तमंचा दाग देता है। सरदार घायल होकर जमीनपर गिर पड़ता है। डाकू भाग जाते हैं।)

सरदार—माफ करना भइया! लड़ा और गिरा। इसका दुःख नहीं है। यह तमंचा अगर मेरे पास होता! मगर अब इन बातोंसे क्या। मर्दके साथ लड़ा और मरा। बस। (मर जाता है।)

विनय—ओः ! (बैठकर अपने कंधेका घाव जोरसे पकड़ लेता है ।) घर जाओ सुशीला, चलो, मैं पहुँचा आऊँ । (उठनेकी चेष्टा करता है मगर गिर पड़ता है ।) घर जाओ ।

सुशी० – किस जगह मारा है ? (देखकर) यह है विनय !

विनय—घर जाओ ।

सुशी०—तुमको यहाँ अकेला छोड़ जाऊँगी ? विनय, मैं औरत होनेपर भी मनुष्य हूँ । देखूँ, कहाँ लगा है ?

(देखनेके बाद अपना दुपट्टा फाड़कर घावपर बाँधने लगती है ।)

विनय—तुम घर लौट जाओ ।

सुशी०—तुम्हें छोड़कर मैं नहीं जाऊँगी ।

विनय—कहता हूँ चली जाओ । लो, वे केदार बाबू आ गये !

[केदारका प्रवेश]

केदार—यह क्या मामला है ?

विनय—सुशीलाको ले जाइए ।

केदार—क्यों ? यह क्या ? यह कौन है ? तुम पड़े हुए क्यों हो ? सुशीला, तुम यहाँ कहाँ ?

विनय—यहाँ एक हत्याकाण्ड हो गया है । सुशीलाको ले जाइए । पुलिस आती ही होगी ।

केदार—आने दो पुलिसको, इससे क्या !

विनय—खून हो गया है, पुलिस सुशीलाको भी इस मामलेमें घसीटेगी । वह पुलिस आ रही हैं, जल्द जाइए ।

केदार—मगर हत्या किसने की है ?

विनय—मैंने ।

केदार—तुमने ?

विनय—हाँ मैंने ।

सुशी०—नहीं केदार बाबू, मैंने हत्या की है, इस पिस्तौलसे ।

केदार—असंभव है । यह मैं नहीं जानता कि किसने हत्या की है, मगर तुममेंसे किसीने हत्या की हो, यह असंभव है, मैं इस बातको सोचना भी नहीं चाहता । जो असंभव है, उसे सोचनेसे क्या लाभ ?

विनय—नहीं केदार बाबू, सचमुच मैंने ही हत्या की है । डाकूके हाथसे

सुशीलाको बचानेमें यह हत्या हो गई है और इसके लिए मुझे फाँसी हो सकती है।

केदार—हो सकती है? तब तो यह निश्चित है कि हत्या मैंने की है। फाँसीपर जानेका मुझे खूब अभ्यास है। यह तुमसे नहीं होगा। यह हत्या मैंने की है।

विनय—आप क्या कह रहे हैं केदार बाबू, सुशीलाको ले जाइए।

सुशी०—मैं नहीं जाऊँगी।

विनय—नहीं तो पुलिस तुम्हें भी इस मामलेमें घसीटेगी।

सुशी०—जो चाहे हो।

केदार—सच है। बेटी सुशीला, आओ, तुम्हें घर पहुँचा आऊँ। लेकिन याद रक्खो विनय, यह हत्या मैंने की है। आओ, चलो बेटी!

सुशी०—अपनी रक्षा करनेवालेको छोड़कर मैं एक पग भी नहीं जाऊँगी।

विनय—जेल जाओगी?

सुशी०—जाऊँगी।

विनय—मैं कहता हूँ कि तुम चली जाओ।

केदार—आओ बेटी।

सुशी०—मैं नहीं जाऊँगी।

केदार—लो सदानन्द बाबू भी आ गये।

(सदानन्दका प्रवेश)

केदार—सुशीला, चलती नहीं हो?

सदा०—आओ बेटी, विनयके लिए तुम कुछ खटका न करो। अगर धर्म है तो उसके लिए कुछ खटका नहीं। मैंने दूरसे सब देखा है।

सुशी०—मैं नहीं जाऊँगी।

सदा०—तुम यहाँ क्या करोगी बेटी?

सुशी०—सो मैं खुद नहीं जानती।

सदा०—बेटी सुशीला, विनय मेरा लड़का है। उसकी रक्षा करनेका जिम्मा मैं लेता हूँ।

केदार—सुना नहीं? सदानन्द बाबू हलफके साथ कहते हैं कि विनय उनका लड़का है और मैं हलफके साथ कहता हूँ कि तुम मेरी लड़की हो। नहीं तो, तुम्हारे ऊपर इतना स्नेह मेरे हृदयमें कहाँसे आया बेटी!

सदा०—जाओ केदार, सुशीलाको ले जाओ।

केदार—आओ बेटी, चलो।

(केदारके साथ सुशीलाका प्रस्थान)

सदा०—(आगे बढ़कर) चोट क्या भारी लगी है विनय ?

विनय—वैसी कुछ ज्यादा नहीं है, लो वह पुलिस आ रही है।

[पुलिसका प्रवेश]

जमादार—कहाँ है लाश ?

सदा०—वह पड़ी है।

जमा०—किसने खून किया है ?

विनय—मैंने।

जमा०—पकड़ लो। सिपाही विनयको गिरफ्तार करते हैं।)

सदा०—मैं थाने तक इसके साथ चलूँगा और जमानता दूँगा।

जमा०—आप कौन हैं ?

सदा०—मैं इसका बाप हूँ।

जमा०—दुःखकी बात है। लेकिन यह खून है !

सदा०—उसके लिए कोई रुकावट न होगी। मैं भारी जमानत दूँगा।

जमा०—कितनी दे सकेंगे ?

सदा०—एक लाख रुपयेकी। मैं तुम लोगोंके पाससे अभी छुड़ा ले जा सकता था, शायद हजार रुपये भी न देने पड़ते। तुम लिख देते 'पता नहीं लगा।' लेकिन वह नही करूँगा। मेरे पुत्रका न्याय-विचार हो। न्याय विचारसे अगर लड़केको फाँसी ही होगी, तो मैं खुद इसे फाँसीपर चढ़ाकर अपने हाथसे इसके गलेमें फन्दा लगा दूँगा।

जमा०—आप क्या कह रहे हैं साहब, आप तो इस लड़केके पिता हैं !

सदा०—जमादार साहब, आपको आश्चर्य हो रहा है ? मेरे यही एक बेटा है। लेकिन अगर मेरे सौ बेटे होते, और उनमेंसे हर एकको इसी तरह फाँसी होती, तो मैं उनकी और तरहकी मौत ईश्वरसे न चाहता। आज मेरी तरह छाती फुलाकर कौन चल सकता है ? ऐसा बेटा और किसका है ? बेटा विनय, तूने मेरा मुँह उजला कर दिया। मेरी आँखोंमें आँसू भरे आ रहे है, दुःखसे नहीं, गर्वसे। मैं धन्य हूँ जो ऐसे पुत्र पानेका गौरव कर सकता हूँ। मैं धन्य हूँ, जो पुत्रको ऐसी शिक्षा दे सका। शाबाश बेटा ! चलो जमादार साहब।

(सबका प्रस्थान)

पाँचवाँ अंक

पहला दृश्य

स्थान—देवेन्द्रका घर। **समय**—प्रातःकाल।

[देवेन्द्र और सदानन्द]

देवे०—पुरखोंका घर बेच चुका, अब पुरखोंकी गिरिस्ती बेचूँगा। उसके बाद एक कोपीन पहनकर राह राह फिरूँगा। बम् भोलानाथ!

सदा०—यह क्या कहते हो देवेन्द्र?

देवे०—कुछ नहीं। तुम लोग आ गये? आओ।

[खरीददारोंका प्रवेश]

देवे०—और लोग कहाँ हैं? अच्छा, इतने ही काफी हैं। पहले यह पलंग लो। बोलो क्या बोलते हो?

सदा०—करते क्या हो? यह पुरखोंकी गिरस्ती है!

देवे०—पिताके ऋणको मैं पुरखोंकी गिरस्तीसे बढ़कर पवित्र समझता हूँ बोलो, कौन बोलता है?

१ आदमी—एक रुपया।

२ आद०—दो रुपये।

३ आद०—साढ़े तीन रुपये।

२ आद०—चार रुपये।

देवे०—चार रुपये, चार रुपये, चार रुपये, एक—

१ आदमी—पाँच रुपये।

देवे०—पाँच रुपये। पाँच रुपये एक, पाँच रुपये दो—

सदा०—देवेन्द्र!

देवे०—जाओ, दिक मत करो। पाँच रुपये एक, पाँच रुपये दो—

सदा०—पचास रुपये, मेरी बोली है। महाशयो, आप लोग बाहर जाइए। चाहे जितनी बोली बोलिए, यहाँसे एक तिनका भी न ले जाने दूँगा।

देवे०—सदानन्द, तुम निकल जाओ।

सदा०—क्यों जाऊँ ? तुम नीलाम करो, मैं बोली बोलूँगा। लो, वे उपेन्द्र बाबू भी आ गये।

[उपेन्द्र और अन्य खरीददारोंका प्रवेश।]

सदा०—आप भी बोलिएगा क्या ?

उपे०—भइया, तुम पुरखोंकी सब गिरिस्ती बेचे डालते हो ?

देवे०—हाँ, बेचे डालता हूँ। तुम भी बोलोगे बड़े भइया ?

उपे०—हाँ, वह आलमारी—

देवे०—अच्छा बोलो। ना, एक लाटमें यह सब नीलाम करूँगा। यह पलँग, आलमारी, बासन-बर्तन सब। कौन लेता है ? बोलो।

उपे०—एक लाटमें ?

देवे०—हाँ एक लाटमें। बम् भोलानाथ।

उपे०—नहीं नहीं, मेरे भाई, सुनो—

देवे०—ना एक लाटमें। पुरखोंकी सब गिरिस्ती एक साथ जाय। तिल तिल करके क्यों कहना ? एक हाथ, बस एक हाथ ! बोलो।

उपे०—क्या करूँ ? तो यही सही। पुरखोंकी गिरिस्ती बाहर कैसे जाने दूँ ? राधेकृष्ण ! राधे कृष्ण ! बस, एक तुम्हीं सत्य हो।

देवे०—बोलो बड़े भइया !

उपे०—बोलूँ, क्या करूँ ? दस रुपये।

१ आद०—पन्द्रह रुपये।

२ आद०— बीस रुपये।

उपे०—तीस रुपये।

३ आद०—पचास रुपये।

उपे०—आः पैंसठ रुपये।

१ आद०—अस्सी रुपये।

उपे०—नव्वे रुपये।

१ आद०—सौ रुपये।

२ आद०—एक सौ पाँच रुपये।

उपे०—एक सौ दस रुपये।

सदा०—दो सौ रुपये।

उपे०—तुम भी बोलोगे सदानन्द ?

सदा०—अवश्य, दो सौ रुपये।

उपे०—दो सौ पाँच रुपये।

सदा०—चार सौ रुपये।

उपे०—छह सौ रुपये।

सदा०—एक हजार रुपये।

उपे०—पन्द्रह सौ रुपये।

सदा०—दो हजार रुपये।

उपे०—ढाई हजार रुपये।

सदा०—पाँच हजार रुपये।

उपे०—साढ़े पाँच हजार रुपये।

[लाठी घुमाते घुमाते केदारका प्रवेश]

केदार—हूँ, हूँ, हूँ, हूँ, हूँ, दस हजार रुपये।

देवे०—केदार! आओ भाई।

केदार—(लाठी घुमाते घुमाते) बोलो उपेन्द्र बाबू! यही वह आलमारी है। चाबी कहाँ है? हूँ, हूँ, हूँ, हूँ, हूँ, दस हजार रुपये। क्या? एः! बोलते बोलते रुक क्यों गये? यह आलमारी नहीं लेने दूँगा। दस हजार रुपये।

उपे०—यह आलमारी लेकर आप क्या करेंगे केदार बाबू?

केदार—तुम्हें जेल भेजूँगा। मैं एक दफा हो आया हूँ, अब तुम्हें जाना होगा।

सदा०—मामला क्या है केदार?

केदार—अभी कहता हूँ! लो, ये यज्ञेश्वर भी आ गये।

[यज्ञेश्वरका प्रवेश]

केदार—यही आलमारी तो है?

यज्ञे०—हाँ यही आलमारी है। चाबी कहाँ है देवेन्द्र बाबू?

देवे०—चाबी क्यों माँगते हो?

केदार—चाबी निकालो, चाबी। हूँ, हूँ, हूँ, हूँ, हूँ, अब आलमारी देख लूँ

देवे०—यह लो। (केदारको चाबी देता है)

केदार—खोलो यज्ञेश्वर बाबू! (चाबी देता है)

(यज्ञेश्वर आलमारी खोलता है और केदार चारों ओर हुमकता और आस्फालन करता फिरता है।)

यज्ञे०—(भीतरसे वसीयतनामा निकालकर और उसे खोलकर) लो यही वह वसीयतनामा है।

देवे०—कौन वसीयतनामा ?

यज्ञे०—आपके पिताका असली वसीयतनामा।

देवे०—तो वह वसीयतनामा ?

यज्ञे०—जाली है। इन्होंने जाल किया है मेरे सामने।

केदार—(उपेन्द्रके मुँहके पास मुँह ले जाकर) कहो भाई साहब !

(उपेन्द्र यज्ञेश्वरके हाथसे वसीयतनामा लेने झपटता है। केदार लाठी तानकर बीचमें खड़ा हो जाता है।)

केदार—बस।

देवे०—बड़े भइया !

उपे०—तुम्हारा यह काम है यज्ञेश्वर ?

यज्ञे०—हाँ, मेरा यह काम है। उपेन्द्र, आश्चर्य हो रहा है ? आश्चर्य होनेकी बात ही है। जो सदाका नीच और पाजी है, वह एक दिनमें धार्मिक हो जायगा ? यह नहीं हो सकता। मगर मैंने माताका प्रसाद पाया है और उससे मैं धन्य हो गया हूँ।

केदार—दावात, कलम, कागज लाओ। जल्दी लाओ, जल्दी—

सदा०—क्यों ?

केदार—अरे ठण्डे हो रहे ! देवेन्द्र, तुम्हारे घरमें दावात-कलम नहीं है ?

देवे०—यह लो।

केदार—हाँ, ठहरो (दावात, कलम, कागज लेकर) ठहरो, लिख रक्खूँ। क्या जानूँ, क्रोधके मारे फिर कहीं भूल जाऊँ। लिख रक्खूँ। (लिखता हुआ) यह दीर्घ 'ई'—तालव्य 'श'में 'व' मिला हुआ—'र' और 'ह'के ऊपर 'ऐ'की मात्रा और अनुस्वार। लिख गया—"ईश्वर हैं"। बस, लिख रक्खा, अब डर नहीं है। यह दीवारपर चिपका भी दिया। (चिपकाकर घुटने टेककर, हाथ जोड़कर) अगर कभी क्रोधके वेगमें मैंने कहा हो कि 'तुम नहीं हो' तो क्षमा करना।

सदा०—विचित्र मनुष्य है !

केदार—मैं नाचूँगा।

सदा०—नाचोगे ?

केदार—यह भी तो ठीक है, नाचोगे क्या केदार ! केदार भइया, सभ्य बनो, नाचो नहीं।

सदा०—ना केदार, सभ्य न बनना। बहुत ही विशुद्ध वस्तु तुममें है। पहले इस देशमें इस तरहके सरल, गँवार ब्राह्मण घरघर थे। इस समय अँगरेजी-शिक्षाकी रगड़से वे चूरमूर होकर लुप्तप्राय हो गये हैं। उन्हींमेंके दो-एक टुकड़े इधर-उधर पड़े हैं। यह पुरानी ब्राह्मणोंकी चाल बनाये रक्खो। यह चीज भारतकी खास अपनी है। पैरोंमें खड़ाऊँ या चप्पलें, मौटी ओर सादी धोती, शरीरमें बल, मनमें स्फूर्ति, मुखपर सरलताकी झलक, यह और किसी देशमें नहीं है।

केदार—तो नाचूँ ? आलमारी, तू धन्य है। खासी आलमारी है। देखूँ (देखता है) अरे बाबारे ! एक घरके भीतर दूसरा घर है ! देखूँ, यह और क्या है ! (नोटोंका बंडल निकालता है) यह क्या है ? क्यों यज्ञेश्वर ?

यज्ञे०—इसे तो मैं नहीं जानता, क्या है।

देवे०—देखूँ (लेकर खोलता है) यह क्या ! चोरी नहीं गये ! (नोटोंका बंडल हाथसे गिर पड़ता है।)

सदा०—यह क्या है देवेन्द्र ?

देवे०—गृहिणी ! कामिनी ! (सिरपर हाथ रखकर दीवारका सहारा ले लेता है।)

सदा०—क्या हुआ देवेन्द्र ?

देवे०—वे ही पाँच हजारके नोट हैं। मुझे भीतर ले चलो सदानन्द, आँखोंके आगे अँधेरा छा रहा है।

(सदानन्द देवेन्द्रको भीतर ले जाते हैं।)

उपे०—तुम्हारा यह काम है यज्ञेश्वर ?

यज्ञे०—हाँ, मेरा ही यह काम है उपेन्द्र, आश्चर्य मालूम होता है ? आश्चर्य होनेकी बात ही है। सदाका पापी मैं, एक दिनमें मेरा उद्धार हो हो जायगा, यह भी कहीं हो सकता है ? मगर कैसा आश्चर्य है उपेन्द्र ! मैयाका प्रसाद पा गया हूँ। वह दिन याद है उपेन्द्र ? वही दिन, जिस दिन मैयाकी दीन, मलीन, धूलि-धूसरित मातृमूर्तिने आकर एकाएक दमभरमें स्वर्गका द्वार खोल दिया ! जान पड़ा, जैसे स्वयं विश्वजननी उतर आई हैं

और मेरे सामने घुटने टेककर, हाथ जोड़कर आँखोंमें आँसू भरकर, पीड़ित सतीत्वकी रक्षाके लिए मुझसे भिक्षा माँग रही हैं और तब मैं सदाका पाजी तर गया। लेकिन याद रक्खो, तुम्हारे लिए कोई आशा नहीं है।

केदार—बिलकुल नहीं है।

यज्ञे०—मैं केवल पापी हूँ, पर तुम ढोंगी भी हो। तुम अपने पापोंका ढेर ढँकनेके लिए ईश्वरका पवित्र नाम—जो भूखेका आहार, प्यासेका जल, पीड़ाकी दवा, परदेशका मित्र, मरणका साथी है—राह राह बेचते फिरते हो। उसके ऊपर, अपनी भतीजीको—बेटीको—उस दिन तुमने बेटी कहकर उसे पुकारा भी था—तुम मेरे व्यभिचारकी आगके मुँहमें ढकेल चुके थे।

केदार—कौन ? किसे ?

यज्ञे०—नीच स्वार्थके लिए, तुच्छ पाँच हजार रुपयोंके लिए अपनी भतीजीको—जिसने विश्वास करके—बापके भाईका विश्वास न करेगी तो किसका करेगी ?—तुम्हारे घरमें आश्रय लिया था, तुम मेरे काम-पाशके फंदेमें छोड़कर चले आये थे।

केदार—(उपेन्द्रकी गर्दन पकड़कर) क्योंरे पाजी ! बस, अब तेरा छुटकारा नहीं है। सिर्फ वसीयतनामा जाली बनाया होता तो तू छोड़ भी दिया जाता। लेकिन तुझ ऐसा बदमाश अगर बिना सजाके छूट जायगा तो संसार एक दिनमें उलट जायगा। मैं यज्ञेश्वरको मार कर जेल हो आया हूँ, अब तेरी बारी है, चल। (प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—देवेन्द्रका अन्तःपुर। **समय**—संध्याकाल।

[विनय और सुशीला]

विनय—तुमने तो कहा था, ब्याह ही नहीं करूँगी !

सुशी०—वह मेरी भूल थी। सोचा था, यह पृथ्वी स्वर्ग है। लेकिन देखा, स्वर्ग नहीं है। नहीं जानती थी कि यहाँ दयामयने नारी-जातिको पुरुष-जातिका शिकार बनाकर पैदा किया है।

विनय—कैसे ?

सुशी०—इस संसाररूपी जंगलमें स्त्री-जाति मुग्ध हरिणीकी तरह विचरती है। हायरी नारी! दासत्व करनेके लिए ही तेरा जन्म है—पहले पिताका, फिर पतिका, फिर पुत्रका। कुछ भी शक्ति नहीं है।

विनय—कुछ भी शक्ति नहीं है? पुरुषकी अन्ध शक्तिको नारी ही राहपर चलाती है। नारीके अपमानसे कौरवोंका सर्वनाश हुआ; नारीके अभिशापसे लंकाका ध्वंस हुआ; नारीके कटाक्षसे दैत्योंका पराजय हुआ।

सुशी०—पुरुषोंकी कृपा! सबसे बढ़कर दुःख यही है कि इन पुरुषोंकी कृपापर भरोसा रखकर नारी-जातिको जीवन धारण करना पड़ता है।

विनय—मगर इसमें पुरुषका क्या अपराध है?

सुशी०—ना, उसका अपराध क्या है? ईश्वरने नारीको पुरुषका आहार बनाया है, पुरुष क्या करे? वह अपनी शक्तिभर ईश्वरके इस अविचारका प्रतिकार करता है। पुरुष नारीका आदर करता है, गृहलक्ष्मीका बनाकर रखता है और यह पुरुषकी असीम कृपा है।

विनय—कृपा है?

सुशी०—और नहीं तो क्या है! ये जो बाल्यविवाह, परदा, इत्यादि चालें हैं, जिन्हें अबतक मैं स्त्री-जातिके ऊपर पुरुषके अत्याचार मानती थी, देखती हूँ कि पुरुष-जातिने खूनी लंपट पुरुषोंसे बचानेके लिए ही चलाई हैं। अब देख पड़ता है कि ये सब बातें एकदम कुसंस्कार नहीं हैं। जब तक नीच, लंपट, व्यभिचारी हैं, समाज जबतक अधःपतित बना हुआ है, तबतक स्त्रीकी रक्षाके लिए इन सब बातोंकी बड़ी जरूरत है। नारी अबला है, शक्तिहीन है।

विनय—पुरुष अगर इतने ही अधम हैं, तो फिर ब्याह क्यों किया?

सुशी०—यह क्या ब्याह है? यह तो एक पुरुषके घरमें एक स्त्रीका आश्रय लेना है। वह उसी पुरुषकी आज्ञा सुनेगी, उसीका दासीपना करेगी और बदलेमें पुरुष उसे खाने-पीने-पहरनेको देगा। यह ब्याह है या निन्दित दासीपना?

विनय—तो फिर यथार्थ ब्याह किसे कहते हैं?

सुशी०—पुरुष और नारी यदि समकक्ष होते, अगर ब्याह पुरुषका विलास और नारीका प्रयोजन न होता, अगर काम उस राज्यका राजा न होता बल्कि प्रेम राजा होता, अगर—

विनय—सो कैसे?

सुशी०—मैं चाहती हूँ विशुद्ध प्यार—निष्काम, निःस्वार्थ, निर्मुक्त प्रेम। जिस प्रेममें उतावलापन नहीं है, डाह नहीं है, संदेह नहीं है, उच्छ्वास नहीं है, विरह नहीं है और जो आकाशकी तरह स्वच्छ और मृत्युकी तरह स्थिर है। तुम रहते मंगल ग्रहमें, मैं रहती बृहस्पति ग्रहमें, और दोनोंके बीचमें सदा एक अश्रान्त अविराम झंकार रहती।

[विनोदिनीका प्रवेश]

विनो०—अब हमारी इस कठिन पृथ्वीकी बस्तीमें उतर आओ। जो होनेका नहीं, वह सोचना बेकार है। संसारमें सुख और दुःख दोनों हैं, इसी कारण वह इतना मधुर है। प्रकाश-अंधकार, घाम-वर्षा, सुख-दुःख, आदिसे युक्त होनेके कारण ही इस पृथ्वीको मैं इतना प्यार करती हूँ। इस पृथ्वीको छोड़कर मैं स्वर्गको भी नहीं जाना चाहती। अब आओ, चलकर भोजन करो।

(सबका प्रस्थान)

[घबराये हुए केदारका प्रवेश]

केदार—अरे कहाँ गई बेटी! यहाँ तो कोई भी नहीं है! मैं गीत सुनानेके लिए सदानन्दकी मण्डलीको भी बुला लाया। ना, यह न होगा। वह गीत अवश्य सुनाऊँगा। कैसा बढ़िया गीत तैयार किया है सदानन्दने—'चिर जीवो तुम' क्या, उसके बाद? हाँ 'चिरजीवो तुम भारत-रमणी,' उसके बाद एक 'प्रवरा' है।—दुत तेरी दुममें धागा!—स्मरणशक्ति बिलकुल ही नहीं है। बुद्धि भी कुछ वैसी अधिक नहीं जान पड़ती।

[सदानन्दका प्रवेश]

सदा०—उसकी जरूरत भी नहीं है। भइया, अपने महत् हृदयके गुणसे तुमने सारी पृथ्वी जीत ली है। केदार, पुराणोंमें अनेक चरित्र देखे और पढ़े हैं, इतिहासके पन्ने भी बहुत उलटे हैं, लेकिन ऐसा सरल, उदार, भोला, त्यागी, अस्थिर, सदा आनन्दमय चरित्र और नहीं देखा।

[देवेन्द्रका प्रवेश]

देवे०—कहाँ है, सदानन्द, तुम्हारी मंडली कहाँ है?

सदा०—सब नीचे हैं।

देवे०—तो उन्हें बुलाओ मैं आज वह गीत लड़कियोंको सुनवाऊँगा।

[सदानन्दका प्रस्थान और कुछ बालकोंके साथ फिर प्रवेश।]

सब गाते हैं—

चिर जीवो तुम भारत-रमणी, रमणी-कुल-प्रवरा।
सुस्मितवदना सुधामयी औ कोकिलकी सी मृदुस्वरा॥
दिव्यसुगठना, लज्जाभरणा, विनत-भुवन-विजयी-नयना।
मलयधीरगमना धीरा औ स्नेहप्रीति-मुखरा ॥ चि०॥ १॥
शिशिरस्निग्धवचना, अनुकूला, किशलयपेलव वामा--
अपराजिता, नम्रतापूर्णा, नीलजलदसम श्यामा--
मुक्तादशना, श्यामलकेशी, रक्तकमलदल-अधरा ॥चि०॥२॥
पतिप्रिया, पतिभक्ता, पतिकी सखी, हँसीमें प्यारी--
दुखमें दीना, दासी, प्रणयिनि, सकल जगतसे न्यारी।
निठुर वचन सुन चुपकी रहती, सर्वसहा ज्यों धरा ॥चि०॥
गृहलक्ष्मी, देवी, स्वदेशकी गरिमा पुण्यवती।
सावित्री-सीता-अनुगामिनि, सती, सुभाग्यवती॥
मर्मर-दृढचरिता, कोमल-मन जलसम, नहिं अपरा।।चि०॥
हा, यह रत्न दासके हियमहँ, पंक-पतित शशि-हाँसी--
परुष भीरु-रमणी तस्कर-तिय स्वार्थदास-दासी--
क्यहि बाँधी पशुसाथ, हाय, ये स्वर्गअप्सरा प्रवरा ॥चि०॥

तीसरा दृश्य

स्थान—जेलखाना। **समय**—तीसरा पहर, शामके करीब।

[उपेन्द्र अकेला]

उपे०--मैं तो सब कुछ छोड़कर आया हूँ, फिर भी वह मेरे पीछे पीछे क्यों फिरती है? मैं जेलमें चला आया, तब भी नहीं छोड़ती। मैं कोल्हूका बैल हूँ और वह जैसे चाबुक मार मारकर मुझे घुमा रही है। मेरे हृदय-सागरके ऊपर जब आँधी चलती है, तब उसका विराट् उच्छ्वास हृदयमें उठता है और छिटक जाता है। और कोई नहीं है, जो उसे छातीपर ले लेवे। मेरे हृदयके भीतर मेरा आत्मा ही जैसे काँप उठता है। मनकी पीड़ा मनके भीतर ही उठकर, मँड़राकर, फिर बैठ-सी जाती है। रह-रहकर

यही हाल होता है। कितने दिनमें प्रायश्चित्त पूरा होगा भगवान्! कितने दिनमें? कितने दिनमें?

[जेलरका प्रवेश]

जेलर—दो सालमें।

उपे०—हाः, हाः, हाः। जेलर साहब, मेरा पाप अगर तुम जानते होते! दो साल क्या, दो सौ साल भोगनेसे भी वह पूरा नहीं हो सकता। जानते हो, मैंने क्या किया है?

जेलर—जानता क्यों नहीं? जाल किया है।

उपे०—हाः, हाः, हाः। शायद इतना ही जानते हो जेलर साहब। नहीं, मैंने सीधी सादी बालिकाको डुबाई है, सीधे सादे भाईको ठगा है, रक्त-मांसके संबंधको उलट दिया है, उसे खानेको न देकर मार डाला है। वह संनिपातमें नहीं मरी जेलर साहब, सन्निपातमें नहीं मरी; अन्नजलके बिना तड़प तड़प कर मरी है।

जेलर—कौन?

उपे०—मेरी स्त्री। वह वसीयतनामेका हाल जानती थी इस लिए उसे विष देकर मार डाला है। जानते हो जेलर साहब, रातको मैं क्या देखता हूँ?

जेलर—क्या देखते हो?

उपे०—देखता हूँ, वे सब मेरे सिरहाने सिरपर खड़े होकर झुककर मेरी ओर एकटक ताक रहे हैं, उसपर सबसे बढ़कर पाप यह है कि मैंने अपने पापोंका ढेर ईश्वरके पवित्र-नामसे ढँका है। 'बगलाभगत' बनकर रहा हूँ। ओह, मेरी क्या गति होगी जेलरसाहब?

(जेलर अत्यन्त अनादर और घृणाकी दृष्टिसे देखकर चला जाता है)

उपे०—मैं अकेला हूँ। यदि यहाँ कुली मजदूरोंके साथ भी बात कर सकूँ तो कुछ तसल्ली रहे; पर उनसे भी बात नहीं कर पाता। मैं जैसे अपनेसे आप भागना चाहता हूँ। हवाकी तरह, रेलगाड़ीकी तरह, आँधीकी तरह दौड़ता हूँ। कहाँके लिए? सो नहीं जानता। भागना चाहता हूँ, बस भागना चाहता हूँ। जी चाहता है, चौबीसों घंटे घानी घुमाता रहूँ। पर शरीरसे यह नहीं होता। ओः और कितने दिन तक यह भोग भोगूँगा? प्रभू, कितने दिनतक भोगूँगा? वह देवेन्द्र आ रहा है। देवेन्द्र!

[देवेन्द्रका प्रवेश]

देवे०—बड़े भइया, (पैरोंपर गिर पड़ता है)

उपे०—मुझे क्षमा करो देवेन्द्र, मैंने जो कुछ किया है—बाहरके प्रकाशमें अबतक जो नहीं सूझ पड़ा था—वह जेलखानेमें दो दिनके अंधकारमें, सूझ गया। पापीके लिए यह तीर्थस्थान है।

[सदानंद और केदारका प्रवेश]

केदार—ईश्वर हैं, यह एक समस्या है !

सदा०—ईश्वर हैं, इसी समस्यामें तुम्हारा सारा जीवन बीत गया केदार?

केदार—नहीं, अब कुछ संदेह नहीं रह गया। अगर कभी चित्त चंचल होनेसे क्षोभके मारे कह दिया हो कि 'तुम नहीं हो,' तो क्षमा करो देव ! तुम हो, और उसका प्रमाण यह है। (उपेन्द्रकी ओर इशारा करके)

सदा०—केदार, पीड़ितके दुःखको देखकर क्या तुम्हें आनन्द होता है ?

केदार—हाँ, अगर वह पाजी हो।

सदा०—मुझे तो दुःख होता है। वह चाहे जितना पाजी और शैतान हो, उसकी यन्त्रणा मुझसे नहीं देखी जाती।

केदार—मुझे तो दुःख नहीं होता। खूब आनन्द होता है, नाचनेको जी चाहता है। मैं नाचूँगा।

सदा०—नाचोगे ?

केदार—यह भी ठीक कहते हो। नाचना नहीं चाहिए। केदार, सभ्य बनो। नाचो नहीं, सभ्य बनो।

उपे०—केदार बाबू, संसारमें अगर कोई ऋषि है, तो आप हैं। आपने अपने लिए कभी नहीं सोचा, परायेके लिए ही सोचते रहे। मैं आपको अबतक पहचान नहीं सका। मेरे सैकड़ों अपराध हैं, मुझे क्षमा करो।

केदार—यह क्या कह रहे हो उपेन्द्र ?

देवे०—बड़े भइयाको क्षमा कर दो केदार !

केदार—यह क्या ! मैं क्या क्षमा करूँगा ? मैं कौन हूँ ?

उपे०—मेरी यह सूरत देखो। मेरे हृदयके भीतर इससे भी भयानक हाल है। इस अंधकारसे भी वह अंधकार घना है। इस दंडसे वह दंड कठोर है। मैं रातको सोते सोते काँप उठता हूँ। क्या किया ! मैंने क्या किया ! क्षमा करो भाई ! (केदारके पैरोंपर गिरता है)

देवे०—(रोना बंद करके) केदार !

केदार—उपेन्द्र, तुम्हारा भाई तुम्हारे लिए रो रहा है; इसीसे आज मेरी आँखोंमें भी आँसू आ गये हैं। नहीं तो तुम ऐसे नीच पाजीके लिए—ना ! केदार ! क्या कहते हो ? आज सुखके दिन क्रोध, विद्वेष, सब नेत्र-गंगाके जलमें बहा दो। उपेन्द्र, भाई, तुम्हारा यह मलिन मुख देखकर जी चाहता है कि तुम्हारे लिए मैं जेल काटूँ और तुम बाहर चले जाओ। क्या यह नहीं हो सकता ?

सदा०—केदार, पुराणोंमें महर्षियोंकी बातें पढ़ी हैं। वे क्या तुमसे भी बड़े थे ?

उपे०—केदार, अब मुझे क्या दुःख है ! तुम सबने मुझे क्षमा कर दिया है। अब मैं हँसते हुए जेल काटूँगा। देवेन्द्र, भाई, मेरी सब जायदाद तुम्हारी है और उससे भी बढ़कर मेरा हृदय, तुम्हारा है। जाओ, घर जाओ। आशीर्वाद देता हूँ कि सदा सुखी रहो।

देवे०—(सूखी हँसी हँसकर) सुखी ? मैं ? ईश्वर कहीं इतना अविचार कर सकते हैं ?

सदा०—जानता हूँ भाई, इस बारेमें भी तुम्हारे अनेक कसरें हैं। लेकिन सब सुखोंके साथ दुःख मिला हुआ है। सर्वथा त्रुटिहीन विशुद्ध उज्ज्वल सुख नाटकके रंगमंचके बाहर नहीं देख पड़ता। संसार रंगमंच नहीं है देवेन्द्र।

देवे०—सदानन्द, केदार, तुम दोनोंका ऋण मैं इस जन्ममें नहीं चुका सकता। इस जीवनमें मैं तुम्हारे उपकार नहीं भूलूँगा। लेकिन मेरा जीवन भी अब अधिक दिन नहीं टिकेगा। अब मैं जीना चाहता भी नहीं। मैं अपनी गृहिणीसे क्षमा माँगनेके लिए व्यग्र होकर उसी ओर दृष्टि लगाये हूँ। जीवनमें वह तो केवल दुःख-दारिद्र्य देखती रही और मैं सम्पत्तिका सुख भोगूँगा ? यह कहीं हो सकता है ?

केदार—क्यों ? बहूजी भी तुम्हारे साथ सम्पत्तिका सुख भोगेंगीं।

देवेन्द्र—बहूजी ! वह क्या अब इस पापपूर्ण पृथ्वीपर है ? मैंने ही तो उसे मार डाला।

केदार—नहीं, वे इसी पृथ्वीपर हैं और मेरे ही घर हैं।

देवे०—यह क्या ! सच—सच कहते हो केदार ?

केदार—मैंने क्या झूठ कहा है ! यह क्या दिल्लगीकी बात है ! वे आत्महत्या करनेको तैयार जरूर थीं, लेकिन मैं उन्हें समझा-बुझाकर उनके बापके घर पहुँचा आया था। उसके बाद वहाँसे आकर इस समय वे मेरे घर हैं।

देवे०—केदार ! केदार ! तुम मेरे कौन हो !

केदार—मैं तुम्हारा भाई हूँ।

उपे०—भाई ! नहीं, भाई क्या इतना बड़ा हो सकता है !

केदार—भाईका पद इससे भी बड़ा है। यह बात जरूर है कि तुम भाईके गौरवकी रक्षा नहीं कर सके।

[जेलरका प्रवेश]

जेलर—महाशयो, समय हो गया; बाहर चलिए।

देवे०—दादा, अपने पैरोंकी धूल दो। (प्रणाम करता है)

उपे०—सुखी रहो।

(उपेन्द्रके सिवा सबका प्रस्थान)

पर्दा गिरता है

समाप्त